

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182474

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H 82**
V 31B

Accession No. **PG H819**

Author **वर्मा, वृन्दावनलाल**

Title **बांस की कांस - 1947.**

This book should be returned on or before the date
last marked below.

सफ़र की साथिन

[हास्य-विनोदपूर्ण सरस एकांकी]

लेखक

रामसरन शर्मा

१९५२

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरो गेट

दिल्ली ६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड^s संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मूल्य एक रुपया बारह आनं

मुद्रक
अमरजीतसिंह नलवा
सागर प्रेस
काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

समर्पण
सादर, सप्रेम
श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
और सरला शर्मा को

अपनी बात

अपनी बात तो बहुत छोटी-सी है । कुछ-कुछ बेकार भी है । न लिखूँ तो कुछ बिगड़ता नहीं, लिखूँ तो कुछ बनने वाला नहीं, पर तो भी केवल इस कारण लिख रहा हूँ कि आप मुझे नाटककार अथवा कलाकार न समझ लें । मैं इन दोनों में से कुछ भी नहीं हूँ । न कभी होने का दावा ही किया है । जो लिखता हूँ वह नितान्त साधारण होता है, ऐसा मेरा विश्वास है । इसी कारण लिखता भी कम हूँ । लेखकों में बैठते डर लगता है, कारण निश्चय ही वह है जो कौए को हंसों की सभा में बैठने से रोकता होगा ।

अब आप पूछेंगे कि, भैया तो लिखते क्यों हो ? जब जानते हो कि बिलकुल बेकार कागज़ काले करते हो, तो चुप ही बैठ रहो न ! और मैं सचमुच ही चुप बैठ रहूँ, यदि लिखने से थोड़ा-बहुत धन न मिलता हो । यह सच्चे मन की बान है, बिना लाग-लपेट की । लिखता क्यों हूँ, सो नहीं जानता । कैसे लिख पाता हूँ, इसका ज्ञान नहीं है । किसी 'वाद' अथवा प्रणाली का न पंडित हूँ, न स्वोकार करने वाला । जहाँ तक समझ पाया हूँ मन की खुजली-सी मिटाने के लिए लिख लेता हूँ, या फिर पैसे कमाने के लिए । शायद इसी कारण जो लिखता हूँ वह यों ही-सा होता है । यदि किसी उच्च भावना के घश होकर, किसी दृष्टि की प्राप्ति के हेतु, जनता-जनार्दन की सेवा के लिए लिख पाता तो अपने को धन्य समझता और निश्चय ही अमर साहित्य का निर्माण करता । पर, यह तो तब होता है जब भगवान् हृदय के अन्तर में जोत जगा देते हैं । वह क्यों किसी को इसके लिए पात्र चुन लेते हैं सो वही जानें । मुझे नहीं चुना सो जानता हूँ । बहुत ऐम्में को भी जानता हूँ जो मुझ जैसे ही अभागे हैं, पर स्वयं को जानते नहीं—या जानकर भी ढोंग करते हैं ।

ख़ैर, बात बढ़ाने से क्या लाभ ? नाटकों का यह संग्रह आपके सामने है। इनमें कुछ का उद्देश्य आपको हँसाना है, कुछ का आपकी दुखती रग को छेड़ना। सो, यदि आप हँसने के लिए या कुछ दुखी होने के लिए, केवल मनोरंजन के लिए, इस पुस्तक पर पैसे डालेंगे तब तो ठीक है। पर कला के नाम पर तो इसमें से कुछ भी हाथ न आयगा।

हिन्दी में हास्य लिखने वाले हैं कहाँ ? इस चुनौती के उत्तर में यह हास्य-नाटक लिखे गए थे। यदि आप भी इन्हें पढ़कर हँस सकें, अथवा केवल मुस्करा-भर ही दें, तो आपके पैसे वसूल और मेरा लिखना सफल। और यदि आप प्रकाशकों को मेरी प्रशंसा में—यानी नाटकों की—लिख दें तब तो शायद कुछ दिन बाद आपको फिर अपनी गॉठ हल्की करनी पड़े। क्योंकि तब वह निश्चय ही मुझसे आग्रह करके लिखवायेंगे, ढेर से रुपये देंगे और मैं मग्न होकर लिखूँगा। उसके बाद साहित्यिक मित्रों के दो दल हो जायेंगे। एक मुझे किराए का टट्टू (कुछ तो अब भी कहते हैं) कहेंगे और कुछ, हास्य-सम्राट्। ऐसी दशा में मुझे—जी हाँ, खूब समझे—उन्हीं लोगों पर नाटक या कहानी, या उपन्यास, या लेख, या खंडकाव्य, महाकाव्य रचने पड़ेंगे। और वह सब फिर आपको ही ख़रीदने होंगे। समझे आप ?

बात कुछ-की-कुछ हो गई। पर चलिए जो हो गई वही ठीक है। नहीं तो मुझे व्यर्थ ही अपनी कला पर (जो है नहीं) अपने विचार (जो हों कैसे ?) प्रकट करने पड़ते। आपका मन उस ठोस पाखंड से ऊबता ही, और आप मुँह बनाकर इस पुस्तक को न ख़रीदकर, दूसरी पर दाम गँवा-देते। इसका क्या कुछ फल होता, सो सोचकर ही मन काँप उठता है—आपका भी और मेरा भी।

हाँ, एक बात और। इनमें से एक नाटक में आपको शायद एक महान् कलाकार की एक कृति को छाया-सी जान पड़े। उसकी कहानी यों है—एक समय की बात है, मेरे एक प्रख्यात कलमकार, कलाकार मित्र ने मुझसे एक एकांकी लिखने को कहा। बोले, एक प्लॉट ध्यान

में आया है, न हो तुम ही लिख डालो। प्लॉट मुझे जँचा। वह क्यों न लिख सकते थे, कारण भी जँच गया। सो मैंने लिख डाला। बाद में अचानक ही, जब उन विदेशी कलाकार की रचना पढ़ी तो मन कुछ कटा। लेखक-बन्धु पर क्रोध और खीझ भी हुई। पर सन्तोष यही हुआ कि मेरे नाटक में विदेशी रचना की यों ही-सी छाया-मात्र ही थी। मैंने जो लिखा था उसे मौलिक तो होना ही था।

बस, अपनी बात समाप्त। आपकी पुस्तक आरम्भ। आशा है इसे पढ़कर आप न लेखक को कोसंगे, न अपने पैसों को रोयँगे।

रामसरन शर्मा

सूची

१. सफर की साथिन	...	१
२. बन्द दरवाजा	...	६
३. बेचारी चुड़ैल	...	१६
४. वकालत	...	३१
५. पत्रकारिता	...	५५
६. बीमारी	...	७६
७. मिल की सीटी	...	६८
८. भूतों की दुनिया	...	१०६
९. आवारा	...	११३

१ सफ़र की साथिन

[जंगल में हवा साँय-साँय कर रही है। बिजली के तारों से टकरा-कर हवा में गूँज उत्पन्न हो रही है। दूर पर सियार 'हुआ-हुआ' चिल्ला रहे हैं। दूर से रेल गाड़ी आती है। आवाज़ ज़ार की होती है, साथ ही बासा भी ज़ोर से बजता जाता है। यकायक दृश्य बदल कर हम उसी गाड़ी के एक डिब्बे में होते हैं। गाड़ी बराबर चली जा रही है]

रमेश—(स्वतः) क्या बज गया ? अरे, बारह ! चलो, मिस्टर रमेश अब पड़ रहो। सफ़र लम्बा है, सर्दी है। सो रहूँगा तो अच्छा है। खिड़कियाँ बन्द कर लूँ।

[उठकर खिड़कियाँ बन्द करता है।]

ठीक ! अब बिजली भी।

[स्विच बन्द कर देता है और बर्थ पर लेट जाता है]

रमेश—(लेटे-लेटे आप-हो-आप) यह खिड़की से भाँकती चाँदनी ! यह लम्बा सफ़र और एकदम अकेले। काश कोई साथ होता.....अरे, न सही कोई रंगीन तिबली, कोई आदमी ही होता। मगर अब किया क्या जाय। सोना पड़ेगा।...

सुन्ना है सफ़र में लोगों के बड़े-बड़े रोमान्स हो जाते हैं। यहाँ तो कभी कोई चूहे का बच्चा भी नहीं मिला। अपनी-अपनी तकदीर है। और क्या ?

[और एक-आध करवट बदलता है। यकायक डिब्बे का द्वार खुलता है। हवा का एक ठंडा झोंका आता है। साथ ही किसी की चूड़ियों की झनक भी। गाड़ी को गड़गड़ाहट ज़ोर से होमे लगती है। रमेश हड़बड़ाकर उठता है।]

रमेश—कौन ?

[बिजली का स्विच टटोलता है]

एक औरत—मैं हूँ, प्यारे ! कमला । ठहरो, बिजली न जलाओ । कोई देख लेगा । मैं वहीं आ रही हूँ । ज़रा दरवाज़ा बन्द कर लूँ ।

[दरवाज़ा बन्द होने का शब्द । फिर वह औरत—कमला—रमेश के पास आती है ।]

कमला—तुम मेरा इन्तज़ार भी न कर सके । अकेले ही चले आए । (उसके पास बैठकर प्यार से) क्या तुम्हें मेरे वायदे पर सन्देह हो गया था । तुम्हें तो यक़ीन होना चाहिए था कि सात तालों में भी बन्द तुम्हारी कमला तुम्हारे पास पहुँच जायगी ।

रमेश—मगर...आप...

कमला—तुम्हें ताज़्जुब हो रहा है कि मैं चली कैसे आई ? उस ज़ालिम ने मुझे ताले में बन्द कर रखा था । मगर तुम्हारे प्रेम ने बन्द ताले में से मुझे निकालकर तुम तक पहुँचाया । पिछले स्टेशन से गाड़ी-गाड़ी भाँकती, लटकती, सर्दी खाती चली आ रही हूँ तब तुम्हारी सूरत दिखाई दी है । प्यारे, अब हम दोनों एक हैं, हमें दुनिया की कोई ताक़त अब अलग न कर सकेगी ।

रमेश—(हिचककर) आपको ग़लतफ़हमी.....

कमला—(चीख़कर)—ग़लत फ़हमी ! यह क्या कह रहे हो ? क्या तुम अपनी कमला को नहीं पहचानते ? या मेरे नन्हें से दिल में प्रेम की आग लगाकर अब डरते हो; मेरा दिल चुराकर अब आँखें चुराना चाहते हो । मैं तुम्हारे लिए 'आप' कब से हुई ? मैं तुम्हारी हूँ, तुम मेरे हो । अब तुम मुझसे नहीं छूट सकते । दुनिया को छोड़कर मैंने तुम्हें पाया है.....उफ़ ! कैसी सर्दी है । मैं भी ओढ़ लूँ ? शरीर काँप रहा है ।

रमेश—(उठकर) हाँ-हाँ ।

कमला—मगर तुम क्यों उठते हो ? क्या हम दोनों ही इसे

नहीं ओढ़ सकते । जीवन में साथ-साथ चलने वाले, एक ही सुनहरा सपना देखने वाले हम दोनों, क्या एक कमल भी नहीं ओढ़ सकते ?

रमेश—क्यों नहीं ? क्यों नहीं ?

कमला—तुम मुझसे नाराज़ हो । तुम्हारे लिए घर-बार, नाम-इज्जत सबको लात मारी है । अब ख़का न होओ, नहीं तो मेरा दुनिया में कोई न रहेगा । ज़िन्दगी के तूफ़ानी दरिया में तुम ही तो मेरी नाव हो, तुम ही मुँह मोड़ोगे तो यह डरावनी लहरें मुझे डुबा देंगी...क्या तुम भूल गए वह दिन...

[धीरे-धीरे बाज़ा बजता है जैसे पहला दृश्य बदल हो रहा है ।
कमला गा रही है]

कमल— नैनों में छाया है रंग तुम्हारा
मन में समाया है रूप तुम्हारा ।
कब से खोज रही थीं आँखें ?
मन के कमल की खिली हैं पाँखें ।
बेदर्दी बालम ने बहुत सताया !

एक नया आदमी—

मन में उनका रूप समाया
मेरा मन अब हुआ पराया
तुमने बनाया अपना मुझी को
मेरी बनकर भूलीं खुदी को

कमला + आदमी—

दोनों के हैं प्रान एक, दो काया ।
दोनों के हैं एक प्रान, दो काया ।
[गाना समाप्त होता है]

आदमी—कमला ! तुम मेरी हो । तुम्हें मुझसे ज़िन्दगी की

कोई परेशानी, कोई मुसीबत, डरावने-से-डरावना तूफ़ान भी अलग नहीं कर सकता।

कमला—प्यारे, औरत का दिल एक होता है। वह उसे एक बार ही देकर सब-कुछ दे डालती है।

आदमी—और सब-कुछ पा जाती है।

कमला—वस मुझे अपने से अलग न करना यही धिनती है।

[धीरे से बाजा बजकर सीन की तटदीप्ती होती है]

एक मर्दाना आवाज़—कमला !

कमला—जी, पिता जी !

पिता—कमला, मैं सब सुन चुका हूँ। उससे भी ज्यादा समझ चुका हूँ। तेरी शादी की तैयारी मैं करूँगा। तू नहीं।

कमला—पिताजी !

पिता—हाँ, बेहया ! तमाम शहर में बदनाम होकर भी सामने बोलने की हिम्मत रखती है। सारा शहर तुझ पर थूकता है। शादी से पहले ही दिल का सौदा करते तुझे शर्म नहीं आई। मैं तेरी शादी हर्गिज़ उससे नहीं करूँगा जिसने तुझे बदनाम कर डाला है। तेरी शादी कन्नोमल से होगी।

कमला—(रुआसी-सी होकर) पिताजी !

पिता—हाँ। बूढ़े हों, कामे हों, अन्धे हों। वही अब तेरे पति होंगे। फिर तुझसे अब शादी करेगा भी कौन ? यह तो उनकी कृपा है वरना.....और, आज से तेरा घर से निकलना भी बन्द। बस।

[जाता है। कमला चीख मारकर, फूट-फूटकर, रोने लगती है। सिसकियों की आवाज़ घुलमिलकर शहनाई की धुन में बदल जाती है। ज़रा देर शहनाई बजकर दृश्य बदलता है—कमला की

सिसकियों का शब्द]

कन्नोमल—(पास आते हुए) फिर वहीं रोना-धोना । कमला, मैं कहे देता हूँ मुझसे हर वक्त के यह चांचले वर्दाश्त नहीं हो सकते । रोना...रोना...जब देखो तब रोना !

कमला—तो मैं क्या करूँ ? आपने तो सब-कुछ जानते-बूझते शादी की है । आप तो जानते थे कि मैं...और अब आप टूटे हुए साज से यह उम्मीद करते हैं कि उससे मीठा राग निकले ? यह कैसे हो सकता है ?

कन्नोमल—ओह हो ! अपने चाहने वाले को याद अब भी बाकी है ! हूँ ? गली-गली की बदनाम बेहया, अभागिनी पर कृपा करके शादी की, उसका यह नतीजा ! तू शायद नहीं जानती कि वह अब तुझ पर थूकेगा भी नहीं । तू मेरी है और मेरी आज्ञा मानना, मेरी मनचाही करना तेरा धर्म है । और एक बात और सुन ले, आज तो ज़वान से कह भर रहा हूँ; मेरे पास और भी तरीके हैं तुझे ठीक करने के ।

कमला—मारियेगा ? वह भी कर लीजिये । अपने हाथों का जोर भी देख लीजिये । मगर मेरा दिल मेरा है, आपका नहीं । आप मुझे मार सकते हैं, इतना कि बदन की हड्डी-हड्डी टूट जाय । मगर दिल को न मार सकेंगे...

कन्नोमल—(आपे से बाहर होकर) अच्छा तो देखूँ तेरी हड्डियाँ और हठ में कितना दम है ?

[पीटता है धीरे-धीरे पिटाई के साथ दृश्य बदलता है ।]

कमला—अब नहीं, सहा जाता प्यारे ! चलो कहीं चल दें । पाप होगा । होता रहे । अगर हम पाप करेंगे, तो यह दुनिया भी तो पापी है जो ज़बदंती दिल पर काबू करना चाहती है । चलो... आज ही रात को...

पहले वाला आदमी—चलो । तुम शायद समझती हो कि मैं अन्धा हूँ—डरपोक हूँ । शायद था । मगर तुम्हारे त्याग ने आँखें खोल दीं । हम दोनों एक हैं, चलो एक हो जायँ...

[दृश्य बदलता है]

[रेलगाड़ी की आवाज़ फिर होती है । धीरे-धीरे मिट जाती है । हम फिर रेल के डिब्बे में हैं]

कमला—तो प्यारे, आज से हमारी नई दुनिया, नई जिन्दगी शुरू होती है...

[गाड़ी के रुकने की आवाज़ । फिर सीटी । गाड़ी फिर चलती है]

कमला—यह गाड़ी तो रुकती हुई चलती है । पर हमारी गाड़ी तो अब कहीं रुकेगी ही नहीं—

[दरवाजा खुलने की आवाज़ । हवा का तेज़ झोंका]

कमला—हाय ! वह यहाँ भी आ गए ।

कन्नोमल—हाँ, तुम तो समझी थीं कि खूब चक्का दिया है । क्यों ? अब पहले तुम्हें गाड़ी से फेंकूँगा, फिर तेरे चाहने वाले को । तभी जो दाग़ तूने खानदान में लगाया है, वह मिट सकेगा । चल इधर !

[आगे बढ़ता है]

कमला—ठहरो ! प्यारे, हम दोनों एक दुनिया न बना सके । ख़ैर, अगली दुनिया में मिलेंगे । लो मेरी अँगुठी ! हाथ लाओ । लो पहनो (पहनाती है) हाँ, कन्नोमल जी, मैं तैयार हूँ ।

कन्नोमल—इधर आओ । तुम्हें दूसरी दुनिया में बहुत इन्तिज़ार न करना पड़ेगा, तेरा चाहने वाला भी अभी आता है !

[दरवाज़ा खोलता है । हवा के झोंके, गाड़ी की गड़गड़ाहट]

कमला—तुम उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकते । अच्छा, प्यारे, विदा ।

[झपटकर कन्नोमल को पकड़ लेती है]

कन्नोमल—अरे, छोड़ ! छोड़, डायन ! मैं गिर जाऊँगा । हाय !

कमला—चलो !

[जोर लगाकर कन्नोमल को धकेलकर स्वयं भी कूद जाती है]

रमेश—(चिल्लाकर) अरे, एकसीडेंट ! गाड़ी रोको । जंजीर, जंजीर कहाँ है ?

[उछलकर जंजीर खींचता है । गाड़ी रुक जाती है]

गार्ड ! गार्ड ।

[गाड़ी रुक जाती है बाहर मुसाफ़िरों की हलचल ।]

गार्ड—आपने जंजीर खींची थी ?

रमेश—अभी-अभी एक आदमी और एक औरत इस डिब्बे से बाहर गिरे हैं ।

गार्ड—अरे, गाड़ी लौटाओ । क्या मामला था ? ड्राइवर !

ड्राइवर—(बूढ़ा आदमी) औरत नीली साड़ी पहने थी ?

रमेश—हाँ । मगर.....

ड्राइवर—नाम कमला था ।

रमेश—हाँ ।

ड्राइवर—आदमी अंधेड़ था । नाम कन्नोमल था ।

रमेश—हाँ । मगर तुम्हें कैसे मालूम ?

ड्राइवर—साहब, बात कुछ नहीं है । यह सब-कुछ नहीं है ।
गार्ड साहब, गाड़ी न लौटाइए ।

रमेश—गार्ड...मगर...

ड्राइवर—अरे साहब, बरसों हुए तब ऐसी घटना वास्तव में हुई थी । ठीक आज ही की तारीख थी । तब से हर साल, आज की रात, इस वक्त वही बात फिर होती है । क्या जाने भूत है, क्या है ?

गाई—(रमेश से) मिस्टर, आप चाहें तो डिब्बा बदल लीजिये ।

गाइवर—नहीं, अब कुछ फ़िक्र नहीं है । आराम से सोइए ।

रमेश—मगर, वह अँगूठी !... हैं ! यहाँ तो एक काला दाग़ भर है । ओह !

[सीटी ! गाड़ी चलने की आवाज़ । गाड़ी चली जाती है ।
धीरे-धीरे सन्नाटा-सा छा जाता है ।]

बन्द दरवाज़ा

पहला दृश्य

[अविनाश और रमेश, दो युवक, अपने कमरे में चाय पी रहे हैं। सामने एक मकान का बन्द दरवाज़ा दिखाई दे रहा है, सहसा थप-थप की आवाज़, दरवाज़ा खटखटाने की होती है। अविनाश खट से प्याला रख देता है।]

अविनाश—तुमने सुना रमेश ?

रमेश—क्या ?

अविनाश—वही थप-थप ! दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़।

रमेश—हाँ, शायद सुनी तो थी, पर बात क्या है ?

अविनाश—बात ! तुम बात पृछते हो ! तुम्हें मालूम है कि हर रोज़, ठीक इसी समय यह थप-थप होती है, जैसे किसी घड़ी का नए ढंग का एलार्म हो या...या...मेरे सिर में ही ठीक इसी समय यह थप-थप होती हो...मगर तुमने भी तो आज सुन ली है।

रमेश—(आश्चर्य से) पर, इसमें विशेष बात क्या है ?

अविनाश—(उसी बहाव में) और तब चुपचाप वह बन्द दरवाज़ा खुल जाता है और आने वाले को अन्दर करके फिर बन्द ! उस बूढ़े, छोटे-से प्राणी की थप-थप में क्या जादू है...सदा-सदा से बन्द रहने वाले वह किवाड़, केवल उसके आने भर से...अच्छा, रमेश उन किवाड़ों के पीछे क्या होगा ?

रमेश—घर की मालकिन और क्या ? (हँसकर) अविनाश, तुम पागल हुए जा रहे हो, पागल।

अविनाश—पागल ! हो सकता है । पर क्या तुम यह नहीं समझते कि उन किवाड़ों के पीछे एक बहुत बड़ा भेद...मूर्तिमान सौन्दर्य...या मूर्तिमान पाप हो सकता है ।

रमेश—हाँ ! जो भी हो, तुम्हें मतलब ?

अविनाश—मतलब ! बड़ा भारी मतलब है दोस्त ! मुझे उन किवाड़ों का भेद जाने बिना चैन न आयगा । नहीं तो दिन-रात उसके बारे में सोचते-सोचते मैं पागल हो जाऊँगा ।

[घड़ी में टन-टन करके सात बजते हैं ।]

रमेश—(चौंखदर) अरे, सात बज गए । चलो यार, वर्मा राह देख रहा होगा ।

अविनाश—चलो ।

[दोनों जाते हैं । जाने के साथ कमरे का द्वार बंद हो जाता है । कमरे में केवल घड़ी टिक-टिक किये जा रही है ।]

दूसरा दृश्य

[सामने वाले मकान का भीतरी भाग । शर्बती अन्नमनी-सी बैठी है । उसके मुख पर पहाड़ीपन होने पर भी विशेष सौंदर्य है । अन्नमने मन से वह गुनगुनाने लगती है]-

शर्बती—बाबुल क्यों व्याही बिदेस (छूट गई सखियाँ) (बिछुड़ गए साथी) बाबुल क्यों...

[गुनगुनाते-गुनगुनाते वह मानो ऊबकर रुक जाती है । कभी इधर-उधर देखती है, दीवारों को । ऐसा जान पड़ता है मानो पिंजरे में चिड़िया बन्द हो ।]

शर्बती—(अपने-आप) क्या करूँ ? अभी तो धूप आँगन में ही है । धीरे-धीरे सरकते-सरकते यह एक कोने में सिमट जायगी, फिर न जाने कहाँ से आकर छाया का अँधेरा फैल

जायगा... फिर दूसरे दिन... वही धूप, छाया, धूप, छाया... बन्द, सुनसान घर... ओह !... जाऊँ भी तो कहाँ ? उन्होंने मना कर रखा है कहीं जाने को... बाहर के आदमी भी तो बुरे होते हैं... अपने पहाड़ जैसे सीधे नहीं... पर, ओफ़ ! मन लगे भी तो...

[दरवाज़ा खटकता है ।]

शर्बती—कौन है ? शायद वह हों ।

[उठकर जाती है ।]

कौन है ?

मूलचंद—(बाहर से) मैं हूँ !

[शर्बती किवाड़ खोल देती है । मूलचंद फौरन ही अंदर आकर उसे बंद कर देता है । उसके थके मुख पर पसीना आ रहा है । दुबला, रोगी-सा, पर आँखों में लिप्सा नाच रही है]

मूलचंद—क्या कर रही थीं ?

शर्बती—कुछ नहीं । करने को है ही क्या ? सोकर, जाग कर, किसी तरह भी दिन नहीं कटता ।

मूलचंद—क्यों ? यहाँ सारे तो आराम ह ? वहाँ पहाड़ में क्या धरा था ?

शर्बती—(उसकी आँखें चमक जाती हैं) वहाँ ! ऊँचे-ऊँचे पहाड़, भरने, चिड़ियाँ, रात-दिन गाया करते थे । मैं जहाँ जी चाहे घूमती थी । वहाँ के लोग भी यहाँ की भाँति बुरे नहीं होते थे, कि मेरे बाहर निकलते ही पकड़ लें । सचमुच क्या ऐसे ही होते हैं यहाँ के लोग ?

मूलचंद—(बात बनाता है) हाँ ! आज ही रास्ते में... एक औरत को पकड़ लिया था... विलकुल तुम-जैसी थी... बेचारी रो रही है ।

शर्बती—(डरकर) राम, राम ! चलो, कुछ दिन पहाड़ ही चलें ।

मूलचंद—(कड़ुएपन से) क्यों ? यहाँ क्या दुःख है ?

शर्बती—(सहमकर) नहीं, कुछ नहीं । पर जब से बप्पा ने तुम्हारे साथ भेजा था, इस घर से निकली ही नहीं हूँ । इसी से कहती थी ।

मूलचंद—(चिढ़कर) अच्छा-अच्छा । देखा जायगा ।

[शर्बती क्षण-भर उसे देखती है फिर उदास भाव से चली जाती है । मूलचंद उसे देखता रहता है । उसके मुख पर ठीक एक डरपोक का-सा भाव, जिसे हरदम अपने धन के खोने का डर हो—उभर आता है ।]

तीसरा दृश्य

[दिन । तूफ़ान और बारिश । अविनाश बैठा-बैठा एकटक सामने के घर को देख रहा है । बंद किवाड़ । सहसा हवा के एक भीषण झोंके से किवाड़ की कुण्डी हिल जाती है । अविनाश चौंककर, किसी भावना के वश, तेज़ी से वहाँ पहुँचता है कि शर्बती किवाड़ खोलती है ।]

शर्बती—(चौंककर, डरकर) कौन ?

[किवाड़ बंद करने लगती है कि अविनाश हाथ से रोक देता है । दोनों चुपचाप खड़े एक-दूसरे को देखते, भीगते रहते हैं ।]

अविनाश—तुम रहती हो यहाँ ?

शर्बती—(मनमुग्ध-सी) और तुम ?

अविनाश—यहीं सामने ।

शर्बती—क्या तुम भी बुरे आदमी हो । औरतों को पकड़ लेते हो ?

अविनाश—कौन कहता है ? यहाँ ऐसा कोई नहीं है ।

शर्बती—वह कहते हैं ।

अविनाश—कौन ?

शर्बती—वह बाबू ।

अभिनाश—(हँसता है) वह गलत कहते हैं । पर देखो तुम भीग रही हो । चलो, अन्दर चलकर सब बात बता दूँगा ।

शर्बती—घर में ? बाबू खफ़ा होंगे पर, तुम भी तो भीग गए हो । अच्छा आओ ।

[उसे अन्दर लेकर द्वार बंद कर लेती है ।]

चौथा दृश्य

[शर्बती का घर । बंद किवाड़ों को मूलचन्द खटखटाता है । शर्बती किवाड़ खोल देती है । मूलचन्द अन्दर जाता है ।]

मूलचन्द—(चारों तरफ देखकर) यह सब पानी कहाँ से कमरे में आया ? चीजें भी उलटी-पुलटी हैं...क्या बात है ? दरवाज़ा क्यों खोला था ? हँय !...क्यों, हँस क्यों रही है ?

शर्बती—घर में तूफ़ान आया था ।

मूलचन्द—तूफ़ान, घर में !

शर्बती—हाँ, वह भीग रहे थे, पानी में । मैंने किवाड़ खोलकर अन्दर बुला लिया था । साथ ही तूफ़ान भी आ गया था ।

मूलचन्द—(भय से) वह ! वह कौन ?

शर्बती—वही गोरे-गोरे-से । सामने वाले बाबू ! बड़े सुन्दर हैं, यहाँ बड़ी देर तक वे जाने क्या-क्या बातें करते रहे । मुझे बड़े अच्छे लगते हैं ।

मूलचन्द—(जलकर) क्या बक रही है ? यहाँ कोई नहीं आया । तू भूठ बोलती है ।

शर्बती—नहीं, भूठ तो तुमने बोला है ।

मूलचन्द—मैंने ? क्यों ?

शर्बती—यहाँ औरतों को कोई नहीं पकड़ता । सब जहाँ चाहे

घूमती हैं, न जाने क्या-क्या खेल-तमाशे देखती हैं... सुनो, मैं भी तमाशे देखूँगी, चलती-फिरती तस्वीरों के।

[मूलचन्द के मानो घूँसा-सा लगा हो, ऐसे कराहकर बैठ जाता है। शर्बती आश्चर्य से उसे देखती रह जाती है।]

पाँचवाँ दृश्य

[शर्बती घर के अन्दर बीमार-सी बैठी है। मुर्दा-सी; कि दरवाज़ा खुल जाता है। वह चौंक पड़ती है। अविनाश अंदर आता है।]

शर्बती—(उलझकर) तुम कैसे आ गए ? ताला तो वह बन्द कर गए थे।

अविनाश—मैंने ताला खोल लिया।

[शर्बती के पास आकर कहता है।]

शर्बती, तुम मेरे साथ चलो ! यहाँ कहाँ सड़-सड़कर दिन बिता रही हो। तुम सुन्दर फूल हो, ज़रा बाहर की हवा देखो...

[शर्बती उसे एकटक देख रही है।]

तुम कैदी बनने को नहीं, रानी बनने को हो। मेरे हृदय की रानी। ज़रा बाहर चलकर देखो तो यह दुनिया कितनी सुन्दर है। चलो... चलो... इस कैद को छोड़ो.....

शर्बती—तुम अपने साथ ले चलोगे ? साथ रखोगे ? खूब घूमने दोगे ?

अविनाश—मेरी रानी होगी तुम !

शर्बती—चलो, जिस दिन से तुम आये हो न जाने क्यों यह घर, यह बन्द किवाड़ मुझे काटते हैं। मन छटपटाया करता है, कहीं दूर तुम्हारे साथ जाने को। मैं रोज़ यही सोचा करती थी... फिर वह भी तो अब बात नहीं करते। न जाने मुझे देखकर क्या सोचा करते हैं ?..... इस भटकते मन ने तुम्हें पाया

है...साथ रखोगे न ? मुझे डर लगता है ।

अविनाश—चलो, तुम मेरे प्राणों के साथ होगी ।

शर्बती—चलो ।

[इधर-उधर कमरे की चीजें उथल-पुथल करती है ।]

मेरी क़ैद ! जेलखाना !.....वह आकर क्या सोचेंगे ?...
ऊँह ! चलो.....

[दोनों जाते हैं । किवाड़ चौपट खुले हैं । कुछ देर बाद मूलचन्द आता है । किवाड़ खुले देखकर धक्-से रह जाता है । जल्दी से अन्दर जाकर.....]

मूलचन्द—हँय, कहाँ गई ? (पागल-सा पुकारकर) शर्बती, शर्बती ! (धीरे से) चली गई ! चली गई ! (कमरे के उलटे-पुलटे सामान को देखकर, धीरे-धीरे कहता है ।) किवाड़ खोलकर तूफान आया था, ताला तोड़कर चला गया.....चली गई !

[बैठ जाता है, थकित, बूढ़ा-सा]

जवानी के तूफान को ताले में बन्द करना बेवकूफी है ।
बेवकूफी !

बेचारी चुड़ैल

पहला दृश्य

[एक छोटा-सा बरामदा । टूटा-फूटा । मानो रहने योग्य न हो । तेज़ी से किसी के आने की आहट । आने वाला रुकता है । यह गृह-स्वामी है । अधेड़, मध्य-वित्त पुरुष । नाम है मोहनदास ।]

मोहन—(सबको सुनाकर) लो भई, मकान मिल गया । ओ कमला, रमेश ! राम मकान मिल गया ।

लक्ष्मी—(पास आकर आश्चर्य से) क्या कहा ? मकान मिल गया । कहाँ मिला, कैसा है ?

[सब गृह-स्वामी को चारों ओर से घेर लेते हैं ।]

कमला—होगा कैसा माँ, किसी क्वाटर में एक कमरा होगा ।

रमेश—या किसी शरणार्थी की भोंपड़ी का एक भाग ।

लक्ष्मी—पगड़ी क्या देनी होगी ।

मोहन—एक पाई भी नहीं; मकान दोमंजिला है । पूरा का पूरा अपना ही होगा ।

लक्ष्मी, कमला, रमेश—हैं ! कमाल हो गया । क्या बात है कौन ऐसा भला मकानदार फँस गया ।

मोहन—बस, जरा पुराना है लक्ष्मी !

लक्ष्मी—उँह, उससे क्या बात है । बरामदे के इस कोने से तो अच्छा होगा । न पानी है, न बाथ-रूम, न रसोई । न खाने को स्थान है, न बैठने को ।

कमला—कत्र चल सकते हैं वहाँ, पिता जी ?

रमेश—हाँ पिता जी, शीघ्रातिशीघ्र, नहीं कोई और न हथिया ले । इस दिल्ली में मकान पर लोग ऐसे ताक लगाये रहते हैं जैसे मुर्दे पर गिद्ध ।

लक्ष्मी—जैसे सड़क के नल पर जनता ।

राम—(प्रसन्नता से चिल्लाकर) जैसे भैया के मित्र पर दीदी...

(सन्नाटा)

मोहन—(कुछ खाँसकर) पर एक बात है ।

लक्ष्मी—वह क्या ?

मोहन—कहते हैं, मकान में भूत रहता है ।

तीनों—भूत !

मोहन—या चुड़ैल ही समझ लो । इसी कारण तो मकान खाली है और मिल रहा है, नहीं तो आजकल खाली मकान तो गधे के सींग हो रहे हैं ।

लक्ष्मी—(भय से) फिर कैसे चलेंगे !

कमला—(भय से) चुड़ैल ! हे राम !

राम—अरे दीदी, तुम्हारे होते हमें क्या डर है । चुड़ैल तुम्हें देखते ही भाग पड़ेगी ।

कमला—(जलकर) चुप ।

रमेश—भई मकान तो बदलना ही है । न होगा तो चुड़ैल को एक कमरा दे देंगे ।

राम—और रमेश भैया उससे व्याह कर लेंगे ।

मोहन—कौन है ? ओहो, आप हैं । कहिए, क्या बात है ?

आने वाला—जरा इधर आइये मोहनदास जी !

मोहन—(पास आकर) आज्ञा ।

आने वाला—(धीरे से) बात यह है कि मेरे बच्चों को शायद

माता निकल रही है आप तनिक.....मेरा मतलब है कमरे और बराँडे में अन्तर ही कितना है !

मोहन—(भयभीत) जी धन्यवाद (चलकर फिर परिवार में ।)

मोहन—लो सब सामान उठाओ । इसी क्षण घर बदलना है ।
रमेश, कमला बेटी, जल्दी करो । देर का अवसर नहीं है ।

सब—क्यों ! क्यों ! क्या हुआ ?

मोहन—बस राह में बताऊँगा । जाओ राम, एक ताँगा ले आओ । तुरन्त आना । तुम लोग जल्दी-जल्दी से सामान लपेट लो

[झटपट सामान लपेट-लपाटकर, ताँगे में जैसे-तैसे पटककर, सारा परिवार चल पड़ता है ।]

दूसरा दृश्य

[नया घर । खूब पुराना है । पर बड़ा है । उसमें चुड़ैल टहल रही है, कम उम्र है, सुन्दर भी है । पर इस समय क्रोध में है ।]

चुड़ैल—(स्वतः) तो ये लोग हैं जो मेरे घर पर अधिकार जमाने आए हैं । साहस तो बहुत किया है ? पर मैं भी कल तक भागने पर मजबूर न कर दूँ तो मेरा नाम । ये लोग यहाँ आए किस बिरते पर । क्या मौत से प्रेम करते हैं या एक नम्बर मूर्ख हैं ? जानते नहीं मैंने बड़े-बड़े सूरमाओं को कपड़े छोड़कर दौड़ाया है ।... या यह मेरा जान-बूझकर अपमान करने आए हैं । मेरा..... चुड़ैलों की नेत्री का, विश्व-प्रसिद्ध चुड़ैल - सभा की सभानेत्री, चुड़ैल-कुल-चूड़ामणि...मैं ! जिसके स्कूल में पढ़कर चुड़ैल मानवों को भगाना सीखती हैं । हमारे अन्तर्राष्ट्रीय चुड़ैल-संघ का मोटो है—

ओ चुड़ैल, ओ चुड़ैल !

सब संसार की रानी है तू,

रानी क्या, महारानी है तू ।
बच्चे बूढ़े, नर और नारी,
सबको सदा कँपाती है तू ॥

ओ चुड़ैल, ओ चुड़ैल !

निशि-दिन, पल-पल, काम यही है—

फैला सब पर निज आतंक ।

रूप दिखाकर, सिर पर चढ़कर,

कर दे सका हुलिया तग ॥

ओ चुड़ैल, ओ चुड़ैल !

सां होने दो रात, आने दो अन्धकार, फिर दिखाऊँगी इन्हें
अपना ढंग और अपने जौहर ।.....

[टन-टन करके घंटा बजता है ।]

तीसरा दृश्य

मोहन—रात हुई, अब तुम लोग सोओ । मैं आज रात
जागकर चुड़ैल को देखूँगा ।

रमेश, कमला, राम—(सब शरारत से) आप तो तमाशा देखेंगे
और हम सोएँ ? नहीं पिता जी, आप सोइये ।

मोहन—नित्य रात को एक की बारी होगी । अपनी बार जाग-
कर देख लेना ।

लक्ष्मी—ठीक है । चल रे राम, मेरे पास सोइयो ! और तुम
देखना जी कोई ऐसी-वैसी बात हो तो जगा लेना ।

मोहन—अच्छा ।

[सब सोने जाते हैं, चारपाइयों पर लेटने की आहट, फिर खुरीटे ।]

चुड़ैल—(प्रकट होकर स्वतः) अब ठीक है, चलूँ और दिखाऊँ
इन्हें अपनी शक्ति । बूढ़े मियाँ की घिघी न बँध जाय तो बात है

हाँ, पर कौन-सा रूप धरूँ । (चुटकी बजाकर) । वस ठीक है ।
(सर्र-सर्र का शब्द) भयानक रूप से म्याऊँ का शब्द.
मानो कोई बड़ी भारी बिल्ली बोल रही हो । (फिर उसी के गुराँने
का शब्द ।)

मोहन—कौन है । अरे यह तो बिल्ली है । या यों कहो बिलाव
है । (बिल्ली जोर से गुराँती है) । वाह, क्या क्रद पाया है । जैसे
बिल्लियों की लकड़ दादी हो । कम-से-कम चार फुट ऊँची तो होगी
ही । और रोम-रोम कैसा चमक रहा है । जान पड़ता है देवी जी
फ़ास्फ़ोरस में डूबकर आई हों । आँखें हैं मानो चीनी की पिरचों में
गन्धक भरकर जला रखी हो । (बिल्ली जोर से चीखती है ।) शश् ! ...
शश् ! ... क्या हल्ला मचाती है । गधी, नालायक ! सोने वालों को
जगायगी क्या ? हुश, हुश, भाग अरे वाह आप तो और भी
पास आ रही हैं ? क्या विचार है । डराने की इच्छा है ? या चूहों
का पता पूछ रही हैं ? (बिल्ली खिन्ने स्वर में बोझती है ।) अच्छा
परिचय चाहती हैं आप । पर मैं नहीं चाहता । सुनिये, कहते हैं
इस घर में एक बड़ी कुरूप, बेडौल चुड़ैल रहती हैं—बिलकुल आप-
जैसी, उससे मिलिये (बिल्ली जोर से चिल्लाती है ।) वाह
भपटने का विचार है तो आइये आइये । यह रहा पानी का
जग और वह गई आप (यकायक पानी फेंक देता है । बिल्ली
चिह्लाकर भागती है) हैं ! हैं ! कैसी भागी ।

[घर के लोग चौंककर जागते हैं ।]

रमेश—क्या हुआ ? कौन था क्या बात है ?

मोहन—कुछ नहीं । बिल्ली थी गधे की सूरत की । अब भाग
गई है । तुम लोग सोओ

[सब सोते हैं ।]

चुड़ैल—(आते हुए).....उफ़ इस बूढ़े की ऐसी-तैसी ।
कैसी मिट्टी पलीक़ की है । सारा शरीर काँप रहा है—तर कर
दिया । और यह जाड़े की रात । मूर्ख ने पानी भी तो पास रखा
था । न जाने जाड़े में भी इतना पानी पीता है क्या । कम-से-कम
दस-तीस सेर तो होगा ही । मुझे ध्यान होता तो बिल्ली बनने के
स्थान पर वत्तख़ या मेंढक ही बन जाती । फिर देखती क्या करता
बूढ़ा ? वह तो अच्छा ही है कि आजकल अकेली ही हूँ । कोई
अतिथि अभ्यागत नहीं है, नहीं तो इस समय लज्जा से मरना
पड़ता । मैं, चुड़ैलों की सरदार । श्रीमती बहुरूपा या नासिकासुरा
को पता चल गया तो राज़ब हो जायगा.....खैर जी, कल देखा
जायगा । मालिश का तेल मलकर अब तो सो रहो । कल मेरा
प्रताप देखेंगे यह लोग । (शीशी खोलकर मालिश करती है साथ-
साथ गुनगुनाती है) 'चल, चल, री चुड़ैल.....'

चौथा दृश्य

[सबेरा । सब लोग चाय पीते हुए बातें कर रहे हैं ।]

रमेश—देखा न, पिता जी को चुड़ैल-बुड़ैल दिखाई ही नहीं दी,
जान पड़ता है किसी ने आपको बहका दिया है ।

मोहन—पर मकान खाली कैसे पड़ा था ?

लक्ष्मी—हाँ, यह आश्चर्य है । खैर जी अब तक तो ठीक
ही रहा । आगे भी भगवान् ठीक ही रखेंगे । हाँ, वह रात वाली
बिल्ली दिखाई नहीं दी, कहाँ गई ?

कमला—होती तो पाल ही लेते ।

राम—मैं तो सारे घर में ढूँढ चुकी । शायद भाग गई है ।

मोहन—आज कौन जागेगा ?

लक्ष्मी—मैं । कल राम का नम्बर है । परसों कमला का, फिर
रमेश का ।

[टन-टन करके दिन बीतता है । फिर रात का समय खर्राटों का शब्द ।]

चुडैल—वह मारा, आज इस बुढ़िया की बुद्धि ठिकाने करनी है । इसके लिए क्या रूप धरा जाय । (सोचती है) अजी रूप की क्या आवश्यकता है । भारी बोझ के रूप में इस पर पड़ रहें । अपने-आप हड्डियाँ चुरमुराने लगेंगी । इसमें दम ही क्या होगा ? इसी प्रकार से तो उस बार उस बूढ़े, चुकन्दर रिसालदार को भगाया था । (हँसती है) । भई क्या थर-थर काँपता भागा था बेचारा । ठोकर लगने पर भी तो नहीं रुका । न जाने युद्ध में कैसे लड़ा होगा । खैर, तो यही ठीक है । पहले हल्का बोझ डालकर उसे बढ़ाती जाऊँगी । फिर देखना बुढ़िया को । रात में ही घर न छोड़े तो मेरा नाम नहीं । तो अब चलना चाहिए । (गुनगुनाती जाती है ।) चल, चल री चुडैल.....

लक्ष्मी—(जम्हाई लेकर) हे राम, इस नींद ने तो तंग कर दिया । शरीर भी तो दिन-भर का थका हुआ है । सामान उठाते उठाते दम निकल गया । और अब इस मरी चुडैल के मारे रात-भर जागरण करो । (फिर कई जम्हाइयाँ) चलो जी, न हो तनिक लेट रहें, सोना तो है नहीं पर शरीर को सुख देने में भी क्या हर्ज है । (लेट जाती है । दो एक मिनट बाद । जिसमें चुडैल बसपर बोझ बनकर पड़ गई है ।) आह, बड़ा चैन पड़ रहा है(कुछ नींद की दशा में) बेटा, तू जुग-जुग जिए । इस समय शरीर दबाकर तूने बहुत काम किया । आत्मा मग्न हो उठी । अब तू जाने बुढ़ापे का समय है, थकान तो होती ही है । फिर दिन-भर सामान की उठा-धरी । मन तो करता था सो रहूँ । पर तुम लोगों के आराम करने का ध्यान करके जागने पर उतारू हो गई । सत्यानाश हो इस राँड चुडैल का । न मरती है न सामने ही आती है ओह बेटा, इतने जोर से क्यों दबा रहा है । मुझे तो चैन पड़ रहा है, पर तू थक जायगा ? हाँ, तो तेरे विचार में वह मुण्डो चुडैल

है भी या मर-खप गई । वाह बेटा ! तू जन्म-जन्म सुख पाये । आज तूने जो सेवा की है उसके क्या कहने । इसी दिन को तो लोग बेटा माँगते हैं । एक बात कहूँ, तू अब ब्याह कर ले । (धूँ-धूँ का शब्द).....क्या कहा, ऐसा भी क्या कि शब्द भी सुन न पड़े । अभी नहीं करेगा । अरे तुम आजकल के लड़के मेम लाओगे मेम, जो 'काम की न काज की ढाई सेर नाज की' । उधर कमला के ब्याह की भी चिन्ता है । अच्छा तेरा वह मित्र—वही रामेश्वर कैसा रहेगा ? हाँ...जोड़ी तो ठीक ही है । (लक्ष्मी की वाणी धीमी पड़ती जाती है । उसे नींद आ रही है ।) .. मैं तो कहती हूँ तुम लोग ब्याह करके घर बसाओ तो मैं सुख से मर सकूँ.....(खुराटे लेने लगती है ।)

चुड़ैल—(हाँफते हुए) ओफ़ ओह । बुढ़िया क्या है । पहलवान है । मेरा तो दम फूल गया बोझ बढ़ाते-बढ़ाते और यह है कि आनन्द से खुराटे ले रही है । चलूँ बाबा, नहीं तो अपने इतने बोझ से मेरा ही हार्ट फेल हो जायगा । इसका क्या, इतना बोझल शरीर तो मुझे ही उठाना पड़ रहा है ! (खिन्नकर) ...सो, मरी, सो ! मरती भी नहीं... बुढ़िया । जाती है ।(सरर.....सरर का शब्द करके चुड़ैल फिर हल्की हो जाती है । फिर एक लम्बा साँस लेकर ।) अब ज़रा चैन पड़ता है । नहीं तो दम घुटा जा रहा था । अंग-अंग टूट रहा है । मन करता है सो रहूँ । इतना भारी बोझ कि मैं चुड़ैलों में श्रेष्ठ चुड़ैल तो थक गई और बुढ़िया, आफ़त की परकाली, कहती रही, बेटा यह, बेटा वह, और अब कैसे आनन्द से लेट रही है । खैर जी, कल इस मामले को निबटाना है एकदम । कल नम्बर है उस लौंडे का । ओह, उसे तो दो मिनट में ठीक कर दूँगी । वही पुराना नुस्खा । जो मेरी माँ ने, पड़नानी से सीखा था । अचूक है.....।

[जाती है ।]

पाँचवाँ दृश्य

[मोहनदास का घर । दूसरी रात । सब सो रहे हैं । केवल राम जाग रहा है ।]

राम—आज मेरा नम्बर है । रात कैसी कटेगी ? हो न हो चुड़ैल है अवश्य । नहीं तो कल माता जी का शरीर किसने दबाया । पर इससे तो जान पड़ता है कि चुड़ैल है शरीर । माता जी बड़ी प्रशंसा करती थीं । (सोचकर) अच्छा यदि मेकानों से मौडल तैयार करूँ तो रात कट सकती है । पिता जी के कहने के अनुसार यदि पढ़ना आरम्भ किया तो बेड़ा पार है । दस मिनट में ही नींद आ जायगी । (मेकानो निकालकर बैठता है ।) हैं यह क्या ? चाकलेटों का डिब्बा ! कहाँ से आया ? भई वाह, देखूँ तो । अरे यह तो गायब हो गया । और यह खाट उठ रही है । मेज चलने लगी । ओहो, चुड़ैल जी का प्रताप जान पड़ता है; पर यह दिखतो क्यों नहीं । देखना तो है ही । देखे बिना क्या आनन्द । अरे, यह सब वस्तुएँ नाच रही हैं । जैसे तांडव कर रही हों । (सोचकर) ठीक है । भगवान् शंकर तो भूत चुड़ैलों के स्वामी हैं हे चुड़ैल तुम्हें भगवान् शङ्कर की शपथ है जो मेरे सामने न प्रगट हो । (चुड़ैल प्रगट होती है ।) ओहो, तो तुम हो चुड़ैल । यहाँ बैठो । सामने, जरा तुम्हें देख लूँ । आज तक कोई चुड़ैल देखी नहीं थी । कुर्सी सीधी कर लो । तुम ही ने तो यह उधम मचाया था ! अरे वाप रे ! क्या लंबे दाँत हैं । क्या ताड़-सी लम्बी है । हमारी मेहतरानी भी कुछ-कुछ तुम-सी है ।

चुड़ैल—(गौँ - गौँ शब्द करके) तू डरता नहीं लड़के, मैं तुम्हें खा जाऊँगी ।

राम—(हँसकर) भई वाह ! यह खाने की भी एक ही

कापी पर दस्तखत कर दो। वैसे तो मैं बड़े लोगों के ही औटोग्राफ लेता हूँ पर तुमसे आज पहली भेंट है न, फिर शायद हो न हो। सो कम-से-कम कल स्कूल में सबको दिखा तो सकूँगा। किसी ने शायद चुड़ैल देखो भी न हो। लो करो दस्तखत (चुड़ैल चुप रहती है।) अच्छा तुम अनपढ़ हो ! छिः-छिः इतना समय व्यर्थ ही खोया।

चुड़ैल—चुप रह, ए लड़के ! मुझे क्रोध न दिला। यह मेरा घर है तू कल सबेरे इसे खाली कर दे नहीं तो.....

राम—नहीं तो क्या अदालत में जाओगी ? पिता जी ने किरायानामा लिखा लिया है। किराये की रसीद ली है। तुम्हारे पास यह सब हो तो अदालत जाना नहीं तो धक्के देकर निकाली जाओगी।

चुड़ैल—(डरावने भाव से) मैं तेरा खून पिऊँगी।

राम—(हँसकर) वाह, सब बुढ़िया औरतें ऐसा ही कहती हैं, जब उन्हें क्रोध आता है।

चुड़ैल—मैं बुढ़िया हूँ ! क्या तुझे दिखता नहीं ? मैं जबान हूँ ! अभी मेरी आयु ही क्या है ?

राम—तुम चुड़ैल हो ना !

चुड़ैल—हाँ, चुड़ैलों की महारानी ! मैं सब-कुछ कर सकती हूँ।

राम—सब-कुछ।

चुड़ैल—सब-कुछ।

राम—तो इसी मेकानों से ज़रा वायुयान बना दो तो जानें। (चुड़ैल घबराई-सी चुप रहती है।) बस घबरा गई, हूँ, चुड़ैलों की महारानी ! जान पड़ता है अकेले पड़े-पड़े बुद्धि भी जंग खा गई है।

चुड़ैल—अच्छा, ला अपना खिलौना इधर।... (पटर-पटर करती है...टन-टन पाँच बजते हैं).....अरे, पाँच बज गए। तेरा यह खेल फिर बनाऊँगी। अब मैं जाती हूँ। दिन हो गया, पर आज

यह घर खाली कर देना नहीं तो.....

राम—नहीं तो क्या ? जिसे मौडल बनाना भी नहीं आता वह क्या कर सकता है । जाना है तो जाओ ।

चुड़ैल—पर तू वह शपथ वापिस ले तो मैं ओभल होऊँ ।

राम—कौन सी शपथ ?

चुड़ैल—भगवान् शंकर की ।

राम—(शरारत से) उसे वापिस लिये बिना तुम अन्तर-धान नहीं हो सकतीं ?

चुड़ैल—नहीं ।

राम—तब मैं वापिस नहीं लेता ।

चुड़ैल—तुम्हें वापिस लेनी ही पड़ेगी । नहीं तो मैं क्या करूँगी ? दिन में मैं बीमार पड़ जाऊँगी । लोग तंग करेंगे । हमारे नियमानुसार दण्ड मिलेगा ।

राम—तुमने ही तो मौडल बनाने में समय गँवाया ।

चुड़ैल—(दुखी होकर) बड़ी भूल की, समय का ध्यान ही न रहा । पर शपथ वापिस ले ले, तू जो माँगेगा दूँगी ।

राम—दोगी ।

चुड़ैल—हाँ ।

राम—तो सुनो । एक डिब्बा चाकलेट । टाफी, बिस्कुटों का डिब्बा, एक टोकरी ताज़ा फल । सप्ताह में दो बार सिनेमा के टिकट । सब खेलों के सामान । चित्रों वाली पुस्तकें । स्वीकार है ?

चुड़ैल—(हताश भाव से)...हाँ, पर शीघ्रता कर ।

राम—अच्छा, शपथ वापिस ली । (सर्र...सर्र...करके चुड़ैल गायब हो जाती है ।) भइ, यह सौदा तो अच्छा रहा । आज से घर का खाना खाने वाले पर लानत !.....अब तो ठाठ-ही-ठाठ हैं । चलूँ, मुँह-हाथ धोऊँ...(जाता है ।)

छठा दृश्य

[अकेली, एक सुनसान कोने में चुड़ैल । दुखी, परेशान, बुरे हाल ।]

चुड़ैल—अब क्या करूँ ? क्या अब हारना ही होगा ? क्या यह लोग यहीं रहेंगे ? मैं क्यों असफल हो रही हूँ ? जान पड़ता है अब मनुष्य हमसे डरते नहीं । (ज़ोर से) नहीं, वे डरते हैं । उन्हें डरना ही पड़ेगा । अभी मेरे पास बड़े उपाय शेष हैं । आज ही उस लड़की कमला को भय से बीमार न डाल दिया तो बात ही क्या रही ? आज देखना है... यह काम करना ही होगा, नहीं तो मैं मर मिटूँगी । आज तीन दिन से एक दाना नहीं खाया । शरीर काँप रहा है । यह मनुष्य क्या जानें कि इनकी हार ही हमारा भोजन है । (थकान से) ...चलूँ उस लौंडे की वस्तुओं का प्रबन्ध करूँ । यह तो करना ही पड़ेगा । (घृणा से) (छिः क्रोध से) पर कै दिन ? मैं सब देख लूँगी ।

[सन्नाटा]

[घर के दूसरे भाग में । कमला अकेली बैठी है । सुन्दर युवती की अपनी चिन्ताएँ और समस्याएँ हैं ।]

कमला—रात बीतती जा रही है, पर मेरे जीवन का अन्धकार मानो समाप्त होने के स्थान पर बढ़ता ही जा रहा है माता जो कहती हैं क्या बात है उन्हें क्या बताऊँ, क्या समझाऊँ, दिल की लगी कोई क्या जाने, 'घायल की गाति घायल जाने और न जाने कोय'... मैं तो कहती हूँ... इस जीने से मौत ही आ जाय तो अच्छा । अब क्या होगा कमला ? क्या करेगी ? मरेगी ? मर सके तो ठीक है । उन्हें पता तो चल जायगा कि सच्चा प्रेम क्या होता है । पर कैसे मरूँ ? विष खाकर ? डूबकर ? गिरकर ? सोचना पड़ेगा पर उनकी बेवफाई के सामने मरने के सिवा और चारा नहीं है ।

दरो दीवार पे हसरत से नज़र करते हैं।

खुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं ॥

माता, पिता जी, भैया राम, ... उँह, जब दिल ही टूट गया तो जीकर क्या करेंगे। हमें तो मरना है, और हमारा खून उनके नाम पर होगा। उस निर्मोही के नाम पर जिसने प्रीत करके ... (भयानक फुझार। बड़े साँप के चलने का शब्द) कौन ? साँप ? फितना बड़ा है। आँखें चमक रही हैं, जीभ लपलपा रही है। आओ मेरे मित्र, तुम बड़े समय से आए हो। तुम्हीं मेरे दुःख का अन्त करोगे। आओ, रुक क्यों गए ? बढ़ो आगे, देखो, एक निदयी की सताई नारी तुम्हारी सहायता माँग रही है। उसे सहायता दो, उसके फन मारो। उसे नरक-यातना से छुटकारा दो ... नहीं आते; तो मैं ही आती हूँ।

(चलती है। साँप फुझार मारकर पीछे हटता जाता है।) अरे, तुम पीछे हट रहे हो। इधर-उधर क्या देखते हो ? देखो, यह मेरी बाँह है। गोरी-गोरी, नम-नम ... उन्हें बड़ी पसन्द थी ... इस पर फन मारो। मारो ... तुम भाग चले। क्यों ? ठहरो ... ठहरो ... (भागती है)।

सातवाँ दृश्य

उड़ल—(दुर्बल स्वर) हृद हो गई। इस लड़की ने जान बचानी कठिन कर दी। राम, राम, कैसी पीछे पड़ी है। मरने को तैयार हो गई थी। उसे भगाने जाकर खुद ही भागना पड़ा। यह बात क्या है। समझ में नहीं आता। मेरी शक्ति ही क्षीण हो गई, या फिर इन लोगों की ही बढ़ गई ? इधर यह तार आया है कि श्रीमती बहुरूपा और नासिकासुरा आने वाली हैं। क्या करूँ ? भूख के मारे अलग बुरा हाल है। जान पड़ता है इस बार मरना ही पड़ेगा। आज सोचकर कुछ-न-कुछ अचूक उपाय निकालना ही होगा।

केवल उस रमेश पर ही अब आशा है। देखें.....(सोचकर) हाँ.....यह उपाय चल सकता है। (उग्रता से).....चलेगा। अवश्य चलेगा। (गुनगुनाती है) चल चल रो चुड़ैल.....(फेड़ करके समयान्तर।)

रमेश—(सुस्ती से) क्या बज गया ? अरे, दो बजते हैं। चलो जी, सो रहो। रात काली करने से क्या लाभ ? (लेटता है। धीमी सर-सराहट। रमेश चौककर उठता है।) कौन ? आप कौन हैं ? बैठिए। कैसे आई इस समय ?

चुड़ैल—मैं चुड़ैल हूँ।

रमेश—बड़ी प्रसन्नता हुई। नाम तो सुना था। पर दर्शन आज ही हुए। आज्ञा !

चुड़ैल—तुम लोग यह घर क्यों नहीं छोड़ देते ?

रमेश—फिर जायँ कहाँ ? आप दूसरा घर दिलवा दीजिए। छोड़ देंगे।

चुड़ैल—तब मुझे तुमसे चिपटना पड़ेगा।

रमेश—हाँ, यह क्या कहती हो। शायद आपका चित्त ठीक नहीं है। तभी तो यह भी समझ सकीं कि किसी सुन्दर युवती को इस समय किसी युवक के कमरे में जाना चाहिए या नहीं। फिर आप ऐसी बात करते लजाई तक नहीं।

चुड़ैल—मैं चिपटती हूँ, तुम तैयार हो जाओ।

रमेश—हाय, हाय, यह क्या गजब है। (सोचकर) अच्छा, अब समझा। यही विचार है तो मैं तैयार हूँ।

चुड़ैल—यानी आप मुझे चिपटाने को तैयार हैं ?

रमेश—जी हाँ।

चुड़ैल—आप डरते नहीं ?

रमेश—पर डरूँ क्यों ?

चुड़ैल—मैं चुड़ैल हूँ। आप शायद भूल गए। मेरे चिपटने से

फिर छुटकारा नहीं ।

रमेश—न मही । जो हो सो हो । अब आप चिपट लीजिए । फिर की फिर देखी जायगी । आइए । अरे, आप पीछे न हटिए । आपने तो स्वयं कहा था । सुनिए तो (बढ़ता है ।)

चुड़ैल—(भयभीत) सुनिए तो ... ठहरिए । मैं ही इस घर से चली जाऊँगी । (रोकर) आप न जाइए । मैं ही इसे छोड़ दूँगी ।
(रोने लगती है जोर-जोर से ।)

रमेश—रोइये नहीं, आपको मेरी कसम है । बस चुप भी हो जाइये । हो भी जाइये यह लीजिये रुमाल । अच्छा साहब चिपटियेगा नहीं ।

चुड़ैल—(धीरे-धीरे सिसकियाँ रोकती है ।) आप लोग जरा भी नहीं डरते हम लोगों से । अब हम क्या करें ? घर छोड़कर जंगल में रहना पड़ेगा ।

रमेश—देखिये, आपको कसम है जो यहाँ से जायँ । आराम से राहिये । कभी-कभी बैठकर बातचीत किया कीजियेगा । इस घर को अपना ही घर समझिये । लो जरा मुसकरा दो । हाँ, ऐसे ।

चुड़ैल—अच्छा, यह सामान राम को दे दीजियेगा ।

रमेश—यह सब क्या है ? अच्छा, भई फिर इतना कष्ट न करना । अब तो आप एक प्रकार से घर की ही हो गई ।

चुड़ैल—पर घर तो आपका ही है । मैं तो इसमें से केवल एक कोना चाहती हूँ ।

रमेश—नहीं साहब, हम आपकी कृपा से रहेंगे । घर वाली तो आप ही हैं ।

(हँसती है । दोनों हँसते हैं ।)

[समाप्त]

वकालत

पहल दृश्य

[श्री बुद्धिस्वरूप का कमरा, धीरे-धीरे वाजा बजता है। यह दिखाने को मानो कोई महत्त्वपूर्ण घटना होने जा रही है। फिर श्री बुद्धिस्वरूप के चलने की आहट। वे धीरे-धीरे भीतर आते हैं।]

बुद्धि—कहिए, आप लोगों ने कोई स्कीम बनाई कि नहीं।
क्यों सुरेश ?

सुरेश—भई बन रही है।

बुद्धि—(बिगड़कर) बन क्या खाक रही है। दो दिन से तुम तीन आदमी स्कीम बना रहे हो या झूठ मार रहे हो। सिगरेटों के डिब्बे खाली हो गए, चाय की नदियाँ बह गईं। फलों के ढेर चरे जा चुके। पर जब पूछता हूँ ठाक के वही तीन पात। मैं कैसे वकालत प्रारम्भ करूँ कि तहलका मच जाय। सफलता हाथ बाँधकर लौंडी बन जाय। यही तो सोचना है।

राजेन्द्र—क्या यह काफ़ी नहीं है ?

बुद्धि—राजेन्द्र, तुम केवल बातें ही बना सकते हो। काम करने में...क्या कहूँ। मैं कहता हूँ, यह काम कौन कठिन है।

रामरतन—कुछ भी नहीं पर—

बुद्धि—चुप रहो रामरतन, मुझे क्रोध आ रहा है, आई एम रेजिग'...सुनो, मैं वकील हूँ ! कहो हाँ !

सब—हाँ !

बुद्धि—मैं बुद्धिमान हूँ, योग्य हूँ, चतुर हूँ। कहो हाँ !

सब—(रुककर, हँसकर) हाँ पूरे हो ।

बुद्धि—फिर मुझे सफलता मिलने में क्या सन्देह है ? केवल तुम लोगों को ऐसी स्कीम बनानी है जो जनता पर, अदालत पर, वकीलों पर, दलालों पर मेरी धाक जमे । और सबको मेरा घर सरलता से मिल जाय ।

सुरेश—(उछलकर) बन गई स्कीम, मार दिया मैदान ।

सब—क्या, क्या ?

बुद्धि—बताओ भई सुरेश—बयान करो ।

सुरेश—सुनो ! स्टेशन पर और दूसरे नगरों से आने वाली बसों के अड्डों पर बड़े-बड़े बोर्ड लगाए जायँ ! जिन पर लिखा हो— भगवान् बुरा समय न लायँ ! मुक़दमे में फँसते क्या देर लगती है ! और फिर कल हो सकता है—जेल, जुरमाना और फाँसी !

बुद्धि—उससे क्या होगा ?

सुरेश—सुनो तो यार, फिर बराबर में रोड-पोस्ट-जैसा खम्भा हो । जिस पर लिखा हो—श्री बुद्धिस्वरूप वकील, हाईकोर्ट, कौजदारी व दीवानी का दफ़्तर इस ओर है । इस प्रकार के बोर्ड प्रत्येक चौराहे पर हों यहाँ तक कि... (खट-खट करके बोर्ड लगाने का शब्द । फिर थोड़ा-सा कलरव) श्री बुद्धिस्वरूप के दफ़्तर के लिए दायें को घूम जायँ । श्री बुद्धिस्वरूप का दफ़्तर ५५ गज़ पर है ! वस, श्री बुद्धिस्वरूप का दफ़्तर सड़क के मोड़ पर ही है । लीजिए आप श्री बुद्धिस्वरूप के दफ़्तर पहुँच गए । (बोग-बाग पढ़कर हँस रहे हैं भई कमाल किया, कोई अनोखा जानवर जान पड़ता है ।)

दूसरा दृश्य

[बुद्धिस्वरूप का दफ़्तर, सब लोग उपस्थित हैं, उत्साह की धारा बह रही है ।]

सुरेश—क्यों उस्ताद कैसी रही ?

बुद्धि—मान गए । यदि यह समाचार ठीक है तो वास्तव में नगर में सनसनी दौड़ रही है ।

रमेश—ठीक है, क्या माने ? हम लोग स्वयं देखकर आए हैं । सारे बोर्डों पर भीड़ जमा है ।

रामरत्न—अब इसी बात पर मिल जाय मिठाई । अगर हम लोग रहे तो कानून का सितारा बनकर रहोगे ।

बुद्धि—हाँ, तुम लोग, और मेरी अपनी बुद्धिमत्ता—रमुआ, ओ रमुआ, जा कुछ मिठाई नमकीन ले आ । और चाय बना दे ।

(जाता है)

बुद्धि—अब मुक्किलों का आना तो गारंटी हो गया ।

रामरत्न—अभी और जो कुछ इस विषय में किया है वह तो सुन लो ।

बुद्धि—क्या ?

रामरत्न—यह देखो आज का अखबार । यहाँ पर पढ़ो, पढ़ो जरा, हमें भी आनन्द आय ।

बुद्धि—(पढ़ता है) शुभ समाचार—जनता को यह जानकारी प्रसन्नता होगी कि अब उनको मुक्तदमे-सम्बन्धी कठिनाइयों का बोझ न उठाना पड़ेगा । श्री बुद्धि स्वरूप के कन्धे स्वयं उन्हें सहकर सरल बना देंगे । अभी-अभी वकील बनकर श्री बुद्धि-स्वरूप ७ जून से प्रैक्टिस प्रारम्भ करेंगे । मुक्तदमे वालों को उनका पदार्पण शुभ हो, यही भगवान् से प्रार्थना है.....।”

बहुत अच्छा, एकदम बढ़िया ! वेल डन, एक्सीलेण्ट, ग्रेट !

[कई लोगों का प्रवेश]

एक आदमी—सलाम वकील साहब !

बुद्धि—कौन हो तुम लोग ? अभी हम नहीं सुनेंगे । मुक्तदमे की बात सुनने का समय नहीं है । बिजी होने के कारण, समझे । जाओ, दफ्तर आना ।

गुक साहब—हम मुकदमा नहीं...

बुद्धि—मुकदमा नहीं, तो फिर क्या भग्न मारने आया है। जाओ, चोरी करो, जाल करो, खून भी कर दो, तब भी हमें परवाह नहीं। मुकदमा बाद तुमको भी परवाह नहीं रहेगा। हम केयरलैस है, तुम केयरलैस हो जायगा।

दूसरा—साहब, हम दलाल हैं। टाउट लोग।

बुद्धि—कौन ?

रामरतन—(धीरे से) अरे भाई, इधर आ—यह लोग मैंने बुलवाए हैं। इन्हीं के कारण तो सारे वकीलों का काम चलता है। यह लोग सबेरे से ही कचहरी, बस का अड्डा, स्टेशन, कोतवाली के बाहर चक्कर लगाकर चिड़िया फँसा लेते हैं। वह चिड़िया, जो तुम्हें सोने के अंडे देगी।

बुद्धि—यानी मुवक्किल ! (प्रसन्नता से) ओह, ठीक है। आप लोग काम करें।

दलाल—पर साहब, हमारी मार्फत आए मुकदमे की आधी फीस हमारी होगी।

बुद्धि—हैं ! आधी ! दलाल तो चौथ लेते हैं।

रामरतन—साहब यह सभी वकीलों से बँधा रेट है।

बुद्धि—नहीं, हम नहीं देगा इतना।

रामरतन—भाई, सब ही इनको रखते हैं, आधी फीस देते हैं। डाक्टर, वकील, सबका इनके बिना गुजारा नहीं। भला शिकार आयगा ही नहीं तो मारोगे किसे और खाओगे क्या ?

बुद्धि—क्या सब लोग दलाल रखते हैं ? तो हम भी रख लेंगे। (दलालों से) जाओ, ठीक है। देखो, सात तारीख से मुवक्किलों का ताँता बँध जाय, ताँता—हाँ, यानी क्यू। समझे ?

दलाल—साहब, दिल्ली के बस-स्टैंड जैसा क्यू लीजिए।

(सब जाते हैं ।)

बुद्धि—भई अब तो सकलता निश्चित है। एकदम।

राजेन्द्र—जी नहीं।

बुद्धि—क्या कहा, नहीं? क्या अपशकुन करते हो।

राजेन्द्र—ठीक कहता हूँ। आप सब लोग समझते हैं कि बस मैदान मार लिया। पर मैं कहता हूँ कि अभी असली समस्या रह ही गई है।

बुद्धि—वह क्या है?

राजेन्द्र—मान लो मुवक्किल तुम्हारे पास आ भो गया। बात भी कर ली। पर वह बिना वकालतनामे पर हस्ताक्षर किये दूसरे के यहाँ न खिसक जाय, इसका तुम्हारे पास क्या उपाय है?

सब लोग—(अटककर) इसका उपाय क्या हो सकता है? बाँध कर तो उसे नहीं रोक सकते।

राजेन्द्र—(विद्रूप से) बस। हाँ, और बुद्ध, दूसरे वकील तुम्हारा दिया मशविरे कान लगाकर सुन न लें या अपने एजेण्टों से सुनवा न लें, इसका क्या इलाज सोचा है?

बुद्धि—(घबराकर) इलाज। पर इसका हो ही क्या सकता है? सारे वकील ऐसा ही करते हैं।

राजेन्द्र—पर क्या तुम्हारे और उनके दिये मशविरे में कोई अन्तर न होगा? क्या मुवक्किल कभी वकील का विश्वास करते हैं? क्या तुम भी यही चाहते हो कि वह तुम्हारा भो न करें?

बुद्धि—नहीं, पर.....

राजेन्द्र—और तुम कचहरी में बैठोगे कहाँ?

बुद्धि—(हिचकिचाहट) एक भोंपड़ी का प्रबन्ध किया है।

राजेन्द्र—(क्रहक्रहा) बस इसी बात पर कहते हो कि हम यह हैं, वह हैं। मित्रों ने वह तैयारी की है, वह ठाठ देंगे। भाई साहब, अब आप धर्म से कहिए कि आपमें और दूसरे वकीलों में अन्तर क्या रहेगा। यह तो वही बात हुई कि किसी देश का प्रधान मन्त्री

किसी मोहल्ले की सभा के प्रधान मन्त्री के समान रहने लगे ।

सुरेश व रामरतन—यार हम मात हो गए । कान पकड़ते हैं मित्र । लो, अब बता भी दो ।

बुद्धि—(खुशामद से) अब कह भी डालो ।

रामरतन—तो सुनो... नहीं, पहले मेरे कुछ प्रश्नों का उत्तर दो । पहला प्रश्न है—क्या तुम जानते हो कि वकील का नाम कैसे मुवकिलों की जवान पर चढ़ता है ?

बुद्धि—मार्के का मुकदमा जीतने से ।

राजेन्द्र—गलत । एकदम गलत । वकील प्रसिद्ध होता है किसी विशेषता से—चाल से, डाढ़ी से, आँख के फूल से, पैर के लंग से ।

बुद्धि—(भयभीत) तो क्या हाथ-पैर कटवाना होगा ?

रामरतन—नहीं । पहले बताओ मैं ठीक कहता हूँ या नहीं । लंगड़ा हकीम, काना वैद्य, भैंगा वकील, लोगों की चर्चा का विषय सरलता से बनते हैं कि नहीं ? कहो हाँ ।

बुद्धि—हाँ । चेष्टा करने पर भैंगा तो मैं हो सकता हूँ ।

राजेन्द्र—चुप । दूसरा प्रश्न है—तुम यह चाहते हो या नहीं कि मुवकिल तुम्हारे पास आकर वापिस न जा सके ?

बुद्धि—हाँ ।

राजेन्द्र—और यह कि तुम्हारे मशविरे गुप्त रहें ?

बुद्धि—हाँ ।

राजेन्द्र—बस, तो आप कचहरी में एक पेड़ पर मचान बनवाइए । नीचे एक आदमी बैठा रहेगा जो सीढ़ी लगाकर मुवकिल को आप तक पहुँचा देगा ।

रामरतन—भई वाह ! क्या बात है ! कमाल कर दिया । खोपड़ी में भेजा ही भेजा जान पड़ता है ।

सुरेश—दूर-दूर तक तुरन्त ही मचान वाले वकील करके

प्रसिद्ध हो जाओगे ।

रामरतन—और मुक्किल सामने आया कि सीढ़ी हटी । फिर क्या है । भख मारेगा और पैसे उगलेगा ।

बुद्धि—और मेरे अमूल्य विचार और वकील न सुन सकेंगे । बस यह राय पास की गई और इसकी तैयारी आरम्भ होनी चाहिए । चलो बहुत काम करने हैं ।

(सब जाते हैं ।)

तीसरा दृश्य

(बुद्धि का घर—सुरेश, राजेन्द्र, रामरतन)

सुरेश—भई, मुझे तो बेचारे बुद्धू पर दया आती है । पर यार है टिपीकल । ऐमा बेवकूफ़ गधा भी भाग्य से मिलता है । उस पर भी रुपए वाला चुपड़ी और दो दो ।

राजेन्द्र—अरे भई, चचा गालिब कह जो गए हैं—

बेवकूफ़ों की कमी नहीं गालिब,

एक दूँदो हजार मिलते हैं ।

कहो हाँ । अर—र—र—अच्छा चुप, वह आ रहा है ।

(बुद्धि का प्रवेश)

बुद्धि—अन्धेर है । सरासर अन्धेर है । आज पाँच तारीख़ हो गई और अब तक न अचकन ही आई है, न सूट ही । मैं कहत हूँ, इस कम्बख़त दर्जी पर क्यों न मुक़दमा चलाया जाय ।

सुरेश—यह अचकन और सूट दोनों क्यों ? उस दिन तो एक हो पहनना होगा ।

राजेन्द्र—अचकन और सूट तो तुम्हारे पास कितने ही हैं ।

बुद्धि—हो न बौड़म ! अरे, नए कपड़े की और ही शान होती है । क्या तुम यह चाहते हो कि ऐसे महान् पर्व पर मैं वही पुराने कपड़े पहनूँ ? मैं वकील हूँ, कहो हाँ ।

रामरत्न—हाँ, ठीक तो है। कचहरी के और बुद्धू के जीवन में क्या यह दिवस दोबारा आ सकता है। न हो दर्जी को बुलवाया जाय।

सुरेश—लो वह आ ही गया। शैतान की आंखें अधिक होती हैं।

(दर्जी आता है।)

दर्जी—सरकार, सलाम !

बुद्धि—खाक सलाम। कपड़े लाए। मन तो कर रहा है कि तुम पर एकदम मुक़दमा दायर कर दिया जाय ? पहला केस यही हो। कहो हाँ।

दर्जी—हाँ। पर सरकार ऐसा न करें। कपड़े ले आया हूँ। सारी रात आँखों में बिताई है तब बना पाया हूँ। देखिएगा तो कहिएगा। फिटिंग देखकर इनाम न दें तो मेरा नाम.....

बुद्धि—लाओ, पहनकर देखें।

(पहनता है।)

दर्जी—क्यों सरकार, न कहिएगा। कैसी फिट आई है अचकन। जैसे सारंगो पर गिलाफ़—वस साहब, अचकन तो मेरे हाथ से दो ही बनी हैं, उम्र भर में। एक तो नवाब साहब मरहूम सालारजंग की और दूसरी आपकी। हुज़ूर नवाब साहब तो अचकन पर ऐसे लट्टू हो गए कि हैदराबाद ले चलने पर बज़िद हो गए। वह तो भला हो उस वक्त के डिप्टी कमिशनर साहब का—रौस साहब थे हुज़ूर—जो अड़ गए कि मैं चला गया तो उनके कपड़े कौन सिलेगा। तब कहीं जान बची। अब ज़रा सूट तो देखिए पहनकर।

बुद्धि—हाँ, लाओ।

(पहनता है।)

दर्जी—अय हय। कुर्बान जाऊँ। क्या ज़ेवतन सूट सिला है।

खुदा भूठ न बुलाय—रौस साहब और हेली साहब दोनों विलायत ले जाने पर तुल गए थे। वह तो कहिए भला हो नवाब बाकरअली खाँ का जिन्होंने रोक लिया। अब बन्दे का दम बन्द। मियाँ आप ही सोचो इस जईकी में कहाँ जाता ? फिर यह अपना वतन है। बाप-दादों की डेवढी है। सो साहब, मर-मरकर जान बचाई। अब तो आप ही लोगों का आसरा है। न रौस साहब ही यहाँ हैं, न नवाब साहब। अय हय ! क्या जमाना था, क्या वक्त था। लोग नाप देने के लिए तरसा करते थे। आह—जब उसकी याद आती है कलेजा मुँह को आता है। खुदा आपकी अजमत को बरकरार रखे, वकालत दिन दूनी चमके, जुर्मों में बेपनाह इजाफ़ा हो और आपकी इनायत नाचीज़ पर रहे। पसन्द आया न सूट आपको ?

बुद्धि—अच्छा है।

दर्जी—तो इजाजत मिले।

हथ्र के दिन तक रहे, कायम तेरा दिलवर जलाल,

तू वकालत का बने, कुछ रोज़ में माई का लाल।

जज बने, डिप्टी बने, बन जाए इक दिन लाट तू ॥

बुद्धि—बस, बस, बड़े मियाँ आपकी दुआ है।

दर्जी—आदाब बजा लाता हूँ।

(जाता है।)

सुरेश—उफ़ोह कम्बख़्त ने कान फोड़ दिए। सर चकरा दिया। पूछो इससे कि यह दर्जी है या दरबारी। जीभ है कि कतरनी को मात करती है। अरे रमुआ, एक गिलास पानी तो ला। बाप रे ?

रामरत्न—भई कुछ हो कपड़े ठीक ही सिले हैं। अचकन तो मानो शरीर का अङ्ग ही बन गई है।

बुद्धि—मुझे तो यह आदमी बड़ा भला जान पड़ता है। कपड़े भी ठीक हैं और अपना कितना भला चाहने वाला है। कहो हाँ।

(बैठकर पाजामा पहनना चाहता है।)

रामरत्न—हाँ। (चीखकर) पर यह क्या कर रहे हो ?

बुद्धि—क्यों चूड़ीदार ट्राई कर रहा हूँ।

रामरत्न—रहने दो, रहने दो, एक बार पहना कि इसकी रौनक गई। बस यह तो उसी दिन पहनना। तभी तो झका-झक चमक रहेगी। लोग देखते रह जायँगे।

बुद्धि—यह सूट पहना जाय तो—

राजेन्द्र—साहब, हमारी राय में तो जो रुआब सूट का पड़ता है, अचकन का नहीं। लाख अंग्रेज़ चले गए हों पर उनकी पोशाक का अभी भी राज स्थापित है।

रामरत्न—अरे चलो भी, बड़े आए सूट-सूट पुकारते। भाई साहब, जो बात हमारी राष्ट्रीय ड्रेस में है वह सूट में कहाँ। अचकन पहनकर आदमी जो रईस लग सकता है वह सूट पहनकर कब हो सकता है।

राजेन्द्र—ठीक है। लेकिन भई, विलायत में सूट पहनते हैं।

रामरत्न—गोली मारो विलायत को। यह विलायत है या बुद्ध ही विलायत जा रहे हैं ? भई यह हमारा स्वतंत्र देश है। यहाँ अपनी ही ड्रेस पहननी चाहिए।

राजेन्द्र—(बिगड़कर) मैं बुद्ध को अचकन पहनकर मूर्ख न बनने दूँगा।

रामरत्न—(और बिगड़कर) बन्दर की नकल कभी न करने दूँगा।

बुद्धि—(बिगड़कर) जब देखो झगड़ा—एक की मानो तो दूसरा बहकता है। तुम लोग न मौका देखते हो न महल। न काइ-सिस, न क्रक्स।

सुरेश—(शांति से) आप लोग सब ठीक कहते हैं। ऐसे समय में हमें मनमुटाव नहीं करना चाहिए। हमारे मित्र के भविष्य का प्रश्न है। वरन् मैं तो यहाँ तक भाषण कर सकता हूँ कि

मज्जेनो और भद्र पुरुषो, यह भारत के न्यायालयों, वकीलों का, समाज, संस्कृति और इतिहास का प्रश्न है। मैं यह मानता हूँ कि आप लोग केवल बुद्धि-प्रेम के कारण ऐसा कर रहे हैं। पर हमें सुलह और शांति से काम लेना चाहिए। मेरा विचार है कि हमें राजेन्द्र और रामरतन के विचारों में समझौता करके ड्रैस का निर्माण करना चाहिए.....

राजेन्द्र—समझौता। यानी कम्प्रोमाइज। यानी छोटे कोट पर चूड़ीदार।

रामरतन—यानी पतलून पर अचकन।

सुरेश—नहीं, मेरी राय है कि मित्र बुद्धू लाल यहाँ से देसी पोशाक में चलें और कचहरी पहुँचकर सूट धारण कर लें।

बुद्धि—वहाँ कपड़े बदलूँ ?

सुरेश—हाँ। एक आदमी सूट लेकर साथ जाय। वहाँ मचान पर पहुँचकर तुम अचकन उतारकर कोट पहन लेना और चूड़ीदार उतारकर..... ठहरो। उतारने की आवश्यकता ही क्या है। उसी पर पतलून न डाँट लेना। सूट से सीढ़ी उतरने-चढ़ने में भी सुविधा होगी। अचकन से दर्शकों पर रौब पड़ेगा।

बुद्धि—दर्शक !

सुरेश—अरे, तुम देखना यार। आधा नगर उपस्थित न हो तो कहना। हम लोगों ने क्या झूठ मारी है। फिर तुम क्या साधारण वकील हो। नगर में इस उत्सुकता से सात तारोख की प्रतीक्षा है कि क्या किसी नाच वाली फिल्म की होती होगी।

बुद्धि—(शान से) तब तो मेरी डबल रेस्पॉन्सिबिलिटी हो गई। एकदम द्विगुण उत्तरदायित्व।

सुरेश—तो भाइयो लगे ज़ोर। कसर न रह जाय। 'आशिक' का जनाज़ा है ज़रा धूम से निकले।'।

चौथा दृश्य

[सात तारीख, सबेर के सवा नौ बजे । अर्थात् बुद्धि के आफ़िस में हलचल की पराकाष्ठा ।]

बुद्धि—क्या बज गया, सुरेश ?

सुरेश—सवा नौ हैं ।

राजेन्द्र—तो मेरे विचार में पुस्तकों वाले को चलता किया जाय ।

बुद्धि—यह पुस्तकों वाले क्या ?

राजेन्द्र—यह भाई साहब, आर्टिस्टिक टच की बात है । वकील क्या कचहरी में हाथ-पैरों से वकालत करेगा ? तुमने देखा होगा कि जितना बड़ा वकील होगा उतनी ही वह पुस्तकें कचहरी ले जाता है । सो तुमसे पहले छः मनुष्य, पुस्तकों से लदे, दो-दो की लाइन में कचहरी जा रहे हैं । देखने वाले भी तो समझें कि कोई ऐसा वैसा वकील नहीं है हमारा मित्र ।

रामरतन—भई कमाल है इस सूझ की । मेरा तो जी चाहता है कि तुम्हारा सिर कलम कर दूँ । क्या बात है ! और वकील भी क्या काली सन्दूकची में रखकर पुस्तकें भिजवा देते हैं । पर यह पुस्तकें इतनी आई कहाँ से ?

राजेन्द्र—कुछ तो क़ानून की हैं । और बाकी सलामत रहे एन साइक्लोपीडीया ब्रिटैनिका । एक साहब के यहाँ से मंगा ली थीं ।

बुद्धि—भई धन्यवाद, खूब सूझी । हो सच्चे मित्र ! हाँ, बाहर कोलाहल कैसा है ?

सुरेश—यह जनता है । इतना भी नहीं समझते ? अपने प्रिय नागरिक और नगर के अग्रणी वकील को देखने आये हैं । ज़रा भाँककर देखो तो ।

बुद्धि—देखूँ । (भाँककर) भीड़ तो भई तूमार की हो रही

है। अब सफलता में क्या संदेह है !

राजेन्द्र—कोई नहीं। अरे रमुआ, जा उन छः आदमियों को बुला ला।

(जाता है और आदमियों सहित आता है।)

राजेन्द्र—लो भई, यह पुस्तकें उठाओ और सीधे कचहरी चलो, वकील साहब के चैम्बर...अरे हाँ, हाँ, वहीं मचान पर। चलो, जल्दी करो।

आदमी—(किताबें उठाते हैं) साहिब ई सबे किताब जाई न ?

राजेन्द्र—हाँ, हाँ।

आदमी—मुदा इतनी किताबन का क्या होई ? ससुर दर्जनन गधन का बोझ लगत है। एक-एक किताब है जानो लोहा की बनी है। उठावत नाहीं बनत...लल्ला की महतारी का एक बार उठावा रही ऊम की अस भारी न रही। का जानी कौन ससुर मारा-मार लिख डारिस है। सो हमका उठाये का पड़त है। चलो रे भइया...एक-एक मनई का भसम किये लायक ता कागज होई न सब मा...एतना मोटा-मोटा तख्ता मा बाँधकर और हू भारी कै दीन.....

राजेन्द्र—चलो, जल्दी करो।

आदमी—अवै लो भइया ! पहले बताये देखो तो हम पंच एक ठेला कि भैसा गाड़ी ले आये होते, फुरे किताबन का ढोय के कचहरी मा ढेर लगाय देत...काहे पंचों, उठाय लीन...तो बोलो राम नाम सत्त है, और चल पड़ो। काहे बाबू भैया का ई रोज कचहरी ले जाय का और लाये का होई ?

राजेन्द्र—हाँ !

आदमी—तब हुकुम होई तो हम ठेल। ले आवा करें। न उठावे की मसकत, न धरे की। वाही में पड़ी रहेंगी। ठेला घसीट कचहरी में डाल दिया, फिर लायके घर के बाहर खड़ा कै दिया।

राजेन्द्र—चलो भी अब ।

आदमी—जाइत है भैया ! अच्छा, एक बात बताये देवो ।
कौनो पण्डित ई टोटका बतावा है न ?

राजेन्द्र—नालायक ! जल्दी करो । और तुरन्त कचहरी
पहुँचो । जाओ ।

(सब जाते हैं ।)

बुद्धि—उफ़, कैसे गधे हैं । कान खा गए...अच्छा, अब
चलना चाहिए ।

रामरतन—वाह, अभी से कैसे ? अभी तो मुन्शियों और
दलालों की टोली जायगी...मुन्शी जी !

मुन्शी जी—जी साहब ?

रामरतन—आप लोग तैयार हैं ?

मुन्शी—जी !

रामरतन—तो चलिए फिर ।

मुन्शी—जी, हम तो तैयार हैं, पर एक निर्णय आप कर
दीजिये ।

रामरतन—वह क्या ?

मुन्शी—यह दलाल कहते हैं कि यह भी हमारे साथ चलेंगे ।
सो साहब यह हमारे साथ नहीं चल सकते, इसमें हमारा अप-
मान है ।

दलाल—जी साहब, हम क्या इनसे छोटे हैं जो इनके साथ
न चलें । भगवान् कसम, यदि हम न हों तो वकील साहब...क्षमा
कीजिए, वकीलों के मुँह में हवा आये और.....

मुन्शी—यदि हम नहीं तो.....खैर मैं किसी के मुँह नहीं
लगता । यह कहना चाहता हूँ कि यदि हमें इनसे पीछे रखा
गया तो हम लोग कचहरी जाने के स्थान पर घर लौट जाना ही
ठीक समझेंगे ।

दलाल—और यही हमारा भी कहना है। अब आप ही न्याय करें।

रामरतन—बड़े दुःख बात है कि तुम लोगों को भी यह टंटा अभी खड़ा करना था। मुहूर्त निकला जा रहा है और तुम लोग सहायता के स्थान पर यह झगड़ा कर रहे हो।

मुन्शी—हुजूर, वकील साहब के लिए जान हाज़िर है, पर यह प्रश्न बिरादरी के मान का है।

दलाल—यह बात है तो वकील साहब के लिए अपनी खाल की जूती हम भी बनने दे सकते हैं पर इतना कहे देते हैं कि.....!

रामरतन—अच्छा, तुम लोग ठहरो! भई, आप लोग ज़रा इधर आइये। बुद्ध, तुम भी आओ। (धीरे-धीरे) यह अच्छा संकट खड़ा हुआ, बुद्धि ही काम नहीं करती।

बुद्धि—वज़ा क्या है?

रामरतन—पौने दस।

बुद्धि—(बिगड़कर) क्या मुसीबत है। प्रत्येक काम में गड़बड़। पौने दस वज़ रहे हैं और टैं-टैं ही समाप्त होने में नहीं आती। जाने दो, सबको निकाल दो। कह दो कि सब घर जायँ! (रुककर, सोचकर) कह दो दोनों से कि दोनों भुण्ड एक साथ, एक सड़क के एक ओर, दूसरा दूसरी ओर चला जाय। बस उन्हें निकालो।

रामरतन—अच्छा।

सुरेश—भई एक बात कहूँ? ...जी चाहता है कि तुम्हारा सिर चूम लूँ।

बुद्धि—क्यों?

राजेन्द्र—इस निर्णय पर। क्या तुरन्त हल निकाला है। मानो साक्षात् सम्राट् अशोक है।

सुरेश—या बादशाह जहाँगीर!

राजेन्द्र—जैसे विक्रमाजीत ।

सुरेश—जैसे.....

बुद्धि—(प्रसन्नता से) धन्यवाद । अभी क्या है । आगे-आगे देखना । अच्छा भई, कचहरी चलें ।

सुरेश—चलो, बाहर जनता भी उत्सुक हो रही है ।

बुद्धि—यार, अचकन में सलबट तो नहीं है ?

सुरेश—नहीं ।

बुद्धि—और पाजामा ?

राजेन्द्र—ठीक है ।

बुद्धि—तो चलो ! (चलते हैं । जनता का कोलाहल ।)

रामरतन—अरे, न्योछावर की रेज़गारी कहाँ है.....(न्योछा-
वर के पैसे गिरने का शब्द । बुद्धि लाल की जय के नारे, हँसी,
कोलाहल ।)

बुद्धि—यह क्या है ?

सुरेश—कार । क्या पैदल जाने का विचार था ? नाक कटाने
का । आओ, बैठो ।

बुद्धि—धन्यवाद ! यानी.....

(कि तुमसे दोस्त जिसके हों उसे किस बात की चिन्ता,

अदालत की न मुवक्किल की न जग की हो उसे चिन्ता !)

(कोलाहल में कार स्टार्ट करता है ।)

पाँचवाँ दृश्य

(कार चल रही है ।)

बुद्धि—यह भीड़ कैसी है ?

रामरतन—यह आपके स्वागत के लिए कचहरी के वकील,
मुहर्रिर, मुवक्किल खड़े हैं ।

बुद्धि—भई, लोग कहते हैं कि संसार मनुष्य की प्रतिभा बड़ी

कठिनता से पहचानता है। मैं कहता हूँ कि यदि मनुष्य वास्तव में योग्य हो तो संसार स्वयं ही उसका स्वागत करता है।

सुरेश—निस्संदेह ! तुम्हारी प्रतिभा संसार क्या उसका वाप भी जानता है।

[कार रुकती है। आ गए-आ गए का कोलाहल, हँसी आदि।]

एक वकील—श्रीमान का सारे वकीलों, और मुख्तारों, चपरासियों, खोंचे वालों, यहाँ तक कि मेहतरों तक की ओर से स्वागत करता हूँ।

बुद्धि—(गर्भारता से) धन्यवाद, मैं भी आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप पर कभी संकट पड़े तो आप बिना संकोच मेरी शरण में आ सकते हैं। 'सर्वे धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज'

(कहकहे। संस्कृत भी बोलता है क्या बात कही है पट्टे ने—आदि की आवाजें)

रामरतन—अरे, यह किताबों का ढेर यहाँ क्यों लगाया है ? इन्हें ऊपर ले चलो।

आदमी—ऊपर साहब ? सीढ़ी टूट जड़ है।

रामरतन—वको मत ! उठाओ जल्दी।

आदमी—मुदा बख्सीस मिलि है कि नाही ? ई ससूर गधन के बोझ ढोए तो गरदन की मालिस कराए पड़ी।

बुद्धि—चलो, जल्दी करो, वको मत, उठाओ जल्दी !

आदमी—चलित है बाबू जी ! उठाओ भैया—मुदा एक बात है जो यह समुर सीढ़ी चटक गई, मचान भचक गया...

सुरेश—चलो-चलो... (मज्जदूर सीढ़ी चढ़ रहे हैं) चलो बुद्धू !

बुद्धि—यार, मचान बड़ा ऊँचा है। अरे, यह सीढ़ी तो एकदम पुताई करने वालों की-सी है।

सुरेश—मैं पकड़े हूँ, तुम चढ़ो।

बुद्धि—अच्छा । ज़रा कसकर पकड़े रहना !

(चढ़ता है ।)

देखने वाला —वकील साहब, सँभलकर ।

दूसरा—हाँ, हाँ, काँपिये नहीं ।

तीसरा—वह गिरा...वह गिरा...सँभल गया ।

एक बूढ़ा—यह क्या कोई नट का तमाशा है ?

एक आदमी—अरे, नये वकील आये हैं ।

बूढ़ा—तभी जानो डगमग करते हैं ।...हाय हाय...बेचारा गिरते-गिरते बच गया ।

एक आवाज़—(चिल्लाकर) हाय-हाय, विचारे की अचकन फँस गई ।

दूसरी—अरे बाप रे, जूता भी निकल गया ।

तीसरी—भइया, मुझे तो कोई दस रुपये भी दे तो इस आफ़त में न फँसूँ ।

चौथी—मालूम पड़ता है, क़ानून पढ़ने से दिमाग़ की चूल हिल गई है ।

पहली—तभी तो यह स्वाँग किया है । पागल वकील खूब आया !

[पागल वकील, पागल वकील, सबकी जबान पर चढ़ जाता है ।]

दूसरी—लो, बेचारा ऊपर तो पहुँच गया ।

['कट' करके मंचान पर ।]

मुन्शी—वकील साहब, ज़रा सँभलकर, मंचान डगमगा रहा है ।

बुद्धि—तो यह ऐसा कमज़ोर बनवाया ही क्यों था ?

मुन्शी—साहब जल्दी का काम, फिर छः तो यह मजदूर हैं इस घर, और यह छः मन कितायें । अबे, तुम लोग क्या कर रहे हो ?

नीचे गिरागे ? हड्डियाँ चूर हो जायँगी, चुप खड़े रहो । वकील साहब को उधर आने दो । हाँ वकील साहब, सँभलकर (बुद्धि का पैर फिसलता है ।) हाँ-हाँ, बच गए साहब बाल-बाल, नहीं तो...

बुद्धि—(कम्पित स्वर में) भई, इसके चारों ओर रेलिंग लग-वाओ आज ही, नहीं तो नित्य एक-आध मौत हुआ करेगा ।

[मचान जोर से हिलता है ।]

अरे यह क्या हुआ ?

मुन्शी—देखता हूँ... यह हज़ूर के दोस्त मिस्टर सुरेश वगैरह आ रहे हैं ।

बुद्धि—(घबराकर) मुन्शी जी, उन्हें रोको, नहीं तो मचान गिर पड़ेगा । बचेगा नहीं ।

मुन्शी—जी साहब, इन मज़दूरों को नीचे भेजा जाय । जाओ वे, तुम यहाँ क्या कर रहे हो । चलो नीचे ।

मज़दूर—कैसन जाई साहब, सीढ़ी पर ऊ लोग आवत हैं ।

बुद्धि—मार डाला, आज सब मरेंगे । मुन्शी जी, मुन्शी जी, जल्दी करो ।

मुन्शी—जी साहब । (चिल्लाकर) अरे आप लोग ऊपर न आइये । न आइये । नीचे ही रहिए । सुनते ही नहीं । ओफ़ ओह क्या आफ़त है—जाइए, फिर आइयेगा ।

(बुद्धि से) समझा दिया साहब । वहाँ तक तो आवाज ही नहीं पहुँच रही थी, या वे लोग चढ़ने की कठिनाई में थे । सो इशारे से समझाया है ।

बुद्धि—अच्छा भई, अब मैं कपड़े बदल लूँ । लाइये मेरा सूट । हाँ, अच्छा यह लोग कौन हैं ?

मुन्शी—मवक्किल हैं, साहब !

बुद्धि—(प्रसन्नता से) मवक्किल, (गम्भीरता से) हाँ तो तुम अपना मामला बताओ, जरा जल्दी से । मुझे समय कम है । अभी

जजी में जाता हूँ। वहाँ से सेशन में, फिर हाईकोर्ट—खैर तुम कहो। परवाह मत करो, यहाँ न कोई तुम्हारी सुन सकता है, न मेरी।

मवक़िल—अजी मचान वाले वकील जी, बात यह है कि यह मेरी घर वाली है।

बुद्धि—(बात काटकर) बाह-बाह क्या कहूँ मैं, ख़ूब है, अच्छी है। तो इसे लेकर कोई भाग गया था। कुछ चिंता नहीं। सात साल की जेल कराऊंगा। कितने दिन उसके पास रही यह... ?

मवक़िल—अजी यह बात नहीं। इसके...

बुद्धि—मैं समझ गया। इसके पास घर में ही बदमाश घुस आया था। ओफ़, यह तो डबल जुर्म हो गया। बस, अब काला-पानी न करवाया तो नाम नहीं।

मवक़िल—आप मुनिये तो... इसके माँ-बाप...

बुद्धि—इसे वापिस ले जाना चाहते हैं। मत भेजना, कहे देता हूँ, नहीं पछताओगे। हाथ से जाने के बाद यह क्या हाथ आयगी।

मवक़िल—वकील जी, तुम तो नाज़ी नयाज़ी बको हो, हमारी सुनो ही नहीं। चल री, दूंसरे के पास चलें।

स्त्री—हाँ जी यह तो बाही-तबाही बके है।

मुन्शी—ठहरो तो।

मवक़िल—ना जी ना (रुककर) पर यह सीढ़ी क्या हुई ? नीचे जायँ कैसे ?

बुद्धि—यही तो बात है। यहाँ से बिना वकालतनामा भरे कोई जा थोड़े ही सकता है। लो, अब सारी बात बता जाओ।

मवक़िल—अजी, पर यह तो जुल्म है। हम नहीं करते तुमको, किसी का जबरदस्ती है। क्यों री, मुन्नी की माँ ?

स्त्री—हाँ, यह भी कोई बात है। यहाँ बन्द करके वकील बने हैं ! (बिगड़कर) या तो मँगा सीढ़ी नहीं तो अभी चिल्लाकर

किरकिरी करती हूँ !

बुद्धि—मुन्शी जी वकालतनामा निकालो न ।

स्त्री—अच्छा (चिल्लाती है) अरे कोई बचाओ, लुड़ाओ, मचानिये वकील ने बन्द कर रखा है । बचाओ, बचाओ ।

मुन्शी—सरकार, हटाइये भी हत्या को । पहले ही दिन शकुन न बिगाड़ दे !

बुद्धि—अच्छा, चुप रह । (सीढ़ी मँगाते हैं) मुन्शी जी, मंगाइए सीढ़ी ।

मुन्शी—जी साहब (बढ़कर पुकारता है) अरे सीढ़ी वाला कहाँ है, सीढ़ी लाओ । सीढ़ी लाओ (पुकारता रहता है यहाँ तक कि गला बैठ जाना है शब्द नहीं निकलता, फिर थककर) साहब कोई नहीं सुनता ।

मवक्किल—फिर अब क्या होगा, क्या यहीं मरना होगा ?

मुन्शी—अबे, तुझे क्या है, उतर जा पेड़ पर सं होकर । मौत तो हमारी और वकील साहब की है । जाओ, नीचे जाकर सीढ़ी वाले को भेज दीजो ।

मवक्किल—अच्छा (स्त्री से) चल री ! अच्छे का मुँह देखकर उठे थे आज । (जाते हैं) ।

बुद्धि—पर मुन्शी जी यह सीढ़ी क्या हुई । अब मवक्किल कैसे आयेंगे ।

मुन्शी—क्या जानें साहब । (जलकर) मवक्किल को तो आपने बिगाड़ दिया, और आकर करेंगे ही क्या ?

बुद्धि—(नीचे देखकर) हाय, यह नीचे लोग कैसे खड़े हैं । शायद मवक्किल होंगे । उफ़, बुरे फँसे आप तो न हों मुन्शी जी, आप ही ज़रा पेड़ से होकर उतर जाइये... और... वह क्या है, सीढ़ी तो देखिये मुन्शी जी वह रखी है । वहाँ रेस्ट्रॉ के पास । जान पड़ता है सुरेश वगैरह ले गए हैं । क्यों ?

मुन्शी—क्या जाने साहब ? शायद मेरा इशारा ग़लत समझे हों और सीढ़ी ले गए हों ।

बुद्धि—तब तो मुन्शी जी ज़रा कष्ट करके पेड़ पर से उतर जाइये ।

मुन्शी—साहब, यह मुझ बूढ़े के बस की बात नहीं है । आप जवान हैं, साहस करें तो कर सकते हैं ।

बुद्धि—(सोचकर) यहाँ बैठना है तो एक टेलीफोन अवश्य लगवाना होगा, नहीं तो किसी दिन सर्दी-पानी में मरना ही पड़ेगा ।

मुन्शी—(उठकर) देखूँ, शायद कोई इशारा समझ ले । मचान भी तो कम्बख्त बड़ा ऊँचा है । (चलकर देखता है) यह, यह कौन हाथ हिला रहा ? ...चपरामा जान पड़ता है...शायद कलकटर साहब का है...वकील साहब...वकील साहब, जल्दी आइये । हाँ, हाँ, गिरियेगा नहीं ।

बुद्धि—(तेज़ी से) क्या है ?

मुन्शी—वह देखिए कलकटर साहब का ही चपरामी है न ? शायद आपको बुला रहा है । हाँ, हाँ, आपको ही । ठीक है, शायद साहब ने आपको सलाम दिया है ।

बुद्धि—(चिल्लाकर) अच्छा, अच्छा, सलाम, सलाम । जाओ, हम आते हैं । अरे, वह सुनता ही नहीं । अरे हम (छ़ाती बजाकर) आते हैं यानी कि (से इशारा करता है । मचान फिर चर्चा उठता है)

मुन्शी—देखिए, देखिए (झटके से बुद्धि को पकड़ता है, वह भड़म : गिरता है) अरे रे, वकील साहब, देखिए बच गए । ओ हो, चोट तो नहीं लगी । शुक्र है, पर बाल-बाल बच गए साहब, वरना हड्डी का पता न चलता ।

बुद्धि—ठीक है, ठीक है, पर अब कलकटर साहब तक कैसे

जाऊँ ? न जाने क्या काम हो ? कहीं उन तक मेरी प्रशंसा पहुँची हो ? नहीं तो भला वे कभी वैसे ही बुलाते । फिर देर तक प्रतीक्षा कराना भी ठीक नहीं...क्या करूँ ? हाय, इन मित्रों ने भी चाय पीने का क्या समय चुना है । और पीनी भी है तो एक-आध प्याला पियें । यह क्या कि पिये जा रहे हैं.....इशारा भी गलत ही समझे क्या करूँ मुन्शी जी ? वस, इस समय तो हनुमान जी को ही याद करूँ... (गाकर)...जय, जय, जय, हनुमान गुसाई, कृपा करो गुरुदेव की नाई, ...

मुन्शी—साहब, यह पेड़ ही हमारा एक-मात्र सहारा है । और आप नाहक डरते हैं । कुछ कठिन थोड़ा ही है । जवान आदमी के लिए तो और भी सरल है । मैं आपसे सच कहता हूँ, पेड़ पर चढ़ना ही कठिन है, उतरना तो बायें हाथ का खेल है । मान लीजिए, पैर फिसला भी तो क्या, नीचे वाली डाल रोक लेगी ।

बुद्धि—तो करूँ साहस, मुन्शी जी ?

मुन्शी—भगवान् का नाम लेकर ।

बुद्धि—(करुण स्वर से) कहीं ऐसा न हो कि इस भरी जवानी में, वकालत के आरम्भ में ही, यह शरीर छूट जाय । देखिए जो ऐसा हो भी तो मित्रों का मेरा प्रणाम कहियेगा, पुस्तकें इत्यादि आप ही रख लीजिएगा । घर पर माता-पिता को पत्र भेज दीजिएगा कि मरते समय मेरी प्रार्थना थी कि मेरा कहा-सुना क्षमा करें । और कलक्टर साहब को जाकर कह दीजिएगा कि उनकी सेवा में उपस्थित होने की चेष्टा में मेरे प्राण गये.....

मुन्शी—घबराइये नहीं साहब, भगवान् भली करेंगे ।

बुद्धि—(उतरते हुए) भगवान् (रोकर गाते हुए) मुझको तुम्हारा ही आसरा, तुम हमारे हो न हो.....मुन्शी जी, ट्रैम्बलिंग... शिवरिंग.....स्टम्बलिंग.....

[पेड़ पर से उतरता है । आह-ऊह करता जाता है । कभी कहता है,

जय जगदीश हरे...कभी जय जय महावीर स्वामी...सहसा ही एक टहनी टूटती है और एक भयानक हाथ के साथ बुद्धि गिर पड़ता है। कोलाहल...भीड़।]

भीड़—मचानिया वकील गिर पड़ा.....वह पड़ा है.....कैसे गिरा.....क्या हुआ था, हम पहले ही कहते थे...हटो हटो...डॉक्टर साहब आ रहे हैं।

डॉक्टर—हूँ (देख-भालकर) एकदम कम्पाउण्ड फ्रैक्चर है। अस्पताल में भरती करना होगा। (कुछ लोग आते हैं।) आप लोग कौन हैं ?

सुरेश—इनके मित्र।

डॉक्टर—इनको शीघ्र अस्पताल ले जाइये, एकदम। तीन-चार महीनों में ठीक हो जायँगे।

सुरेश—हाथ बेचारा वकील बुद्धि-स्वरूप ! न जाने किसका मुँह देखकर वकालत शुरू की। (कार आती है।) चलो राजेन्द्र, इसी में ले चलो।

[उठाते हैं।]

बुद्धि—(टूटे शब्दों में) कलकटर साहब.....सर.....योर ऑनर.....मी लार्ड।

[कार चली जाती है।]

पत्रकारिता

[थोड़ा-सा अस्फुट कोलाहल । जैसा अस्पताल में होता है । ट्राली के चलने का शब्द । कम्पाउण्डर, डॉक्टर साहब, नर्स इत्यादि की यदा-कदा किसी बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि हम अस्पताल में हैं । इसी के बीच किसी के चलने का स्पष्ट शब्द । चलने वाला रुकता है तो हम बुद्धिलाल के कमरे में हैं ।]

रुकने वाला—(सिन्हा) कहो भाई बुद्धिलाल, अब तो ठीक ही जान पड़ते हो । चलने योग्य हो गए या नहीं ?

बुद्धि०—(साँस खाँचकर) आओ सिन्हा, कैसे हो भाई ? हड्डियाँ तो जुड़ गई हैं । पर न जाने क्या हुआ है कि एक पैर छोटा रह गया है ।

ब्रजवासी—अरे यार, जान बच गई यही बहुत समझो । जब तुम उस अभागे मचान से गिरकर धरती पर बेहोश पड़े थे, मुझे तो ऐसा लगा मानो तुम हमसे सदा के लिए बिछुड़ गए । मन में मानो किसी ने पुकारकर कहा, रो ब्रजवासी रो, अब तेरा अभिन्न मित्र तुझसे सदा के लिए रूठकर चला गया ।

सिन्हा—घर चलने का विचार हो तो ताँगा ले आऊँ, या टैक्सी ।

बुद्धिलाल—हाँ चलना तो है ही । आज डॉक्टर ने भी छुट्टी दे दी है । इसी कारण तो मैंने जगदीश से कहकर तुम सब लोगों को बुलवाया था ।

जगदीश—अरे, मैंने जैसे ही सबको समाचार दिया सब लोग आ पहुँचे हैं । पर तुम कुछ चलने को उत्सुक नहीं दीखते ।

क्या बात है ?

बुद्धि—(आह भरकर) बात क्या है भई, अब तो मन करता है कि यहाँ से कहीं न जायँ। यहीं पड़े-पड़े सारी आयु बिता दें।

सिन्हा—क्यों ? चित्त तो ठीक है ? फिर संसार के अन्य काम कैसे करोगे। यहाँ पड़े रहकर तो कुछ होने का नहीं।

बुद्धि—पर हमारा तो संसार अब यहीं आ गया है। गागर में सागर समाया है। भगवान् ने सुदामा की पहुनाई की है। मन के पंछी ने दाना देख लिया है।

वृज—खैर तो है यार ? कहीं सदमा सर में असर तो नहीं कर गया। यह डॉक्टर शरीर को स्वस्थ बनाकर मन को तो...

बुद्धि—तुम मुझे पागल समझते हो। हँसी उड़ाते हो। उड़ाओ। संसार के आरम्भ से ही मित्रों और साथियों ने हम लोगों पर ताने कसे हैं। मुझे विश्वास है मजनूँ की उसके स्कूली साथियों ने और फरहाद की अन्य इञ्जीनियरों ने खिल्ली उड़ाई होगी..... हम तो केवल यही कहते हैं—

ऐ देखने वालो, तुम हमें हँस-हँस के न देखो।

तुमको भी मुहब्बत कहीं हम-सा न बना दे।।

जगदीश—(चिह्लाकर) तो यह बात है.....।

बुद्धि—यदि तुम ले ही जाओगे हमें इस स्वर्ग से यारों।

तो या तो लाश जायगी या फिर हम लौट आयेंगे।।

सिन्हा—वह कौन है ?

जगदीश—कहाँ है ?

बुद्धि—वह नारी है। अब तुम लोग यदि मेरा भला चाहते हो तो या तो मुझे वह राह बताओ कि यहाँ से जाना न पड़े या फिर वह भी साथ चले।

सिन्हा—हुँ, यह बात है। अच्छा तो तुम अब यह कहो कि उससे अब तक क्या बातचीत हुई है। यानी तुमने प्रेम प्रकट

किया है या नहीं। यदि किया है तो उसने क्या कहा ?

बुद्धि—अरे भाई यही तो रोना है। उससे न जाने कितनी बार बात करनी चाही। भाँति-भाँति से उसके हृदय पर प्रभाव डालने की निरन्तर चेष्टा की.....पर वह तो पत्थर है, पत्थर ! न हाँ, न हूँ।

बृज—वकील होने का रौब दिया होता।

सिन्हा—क्या तुम्हारे पुरुषोचित सौन्दर्य पर भी.....?

बुद्धि—अरे भइया, वकीलों को वह गरीबों का रक्त चूसने वाला जो बताती है। कई बार सर्द आह भरने पर, साहस करके हाथ थाम लेने पर और टूटी टाँग की पीड़ा की चिन्ता न करके उठ-बैठकर उससे पूछने पर, उसने अपनी कजरारी आँखें मुझ पर डालकर कहा.....।

जगदीश—क्या कहा ?

बुद्धि—कहा, कि आप वकील हैं। संकट में पड़े. नर-नारियों के कपड़े उतारने वाले निर्दयी डाकू हैं। जनता की सेवा करके, देश को उन्नत बनाने वाले नागरिक नहीं। आपका जीवन देश के लिए अभिशाप है, वरदान नहीं। आप पैरेसाइट हैं।

बृज—भई, क्या बात है। बिलकुल किताबी प्रेमिका जान पड़ती है। भइया, मेरी राय में तो उसे मारो गोली। वकालत न करोगे तो क्या करोगे ?

सिन्हा—हाँ जी, उससे प्रेम करना तो किसी लेक्चरर से प्रेम करना है। दायें-बायें व्याख्यान ठोका करेगी। हमारी तो राय है कि.....

बुद्धि—चुप रहो, चुप रहो। वह आ रही है। (नर्स आती है नाम है, चन्द्रा।)

चन्द्रा—कहिये, कैसा चित्त है ? अब तो आप ठीक जान पड़ते हैं। यह मित्र आपको घर ले जाने आये हैं ? ठीक भी है। सबकिलों

का खून चूसे भी तो कितने ही दिन हो गए हैं। जाइये देश का नाश कीजिये। पर इस बार यदि मचान से गिरे तो.....

बुद्धि—तू तो दिन रात मुझे जोंक कहा करती है, प्यारी क्या कहूँ याद तेरी को तू मेरा खून पिये जाती है।

चन्द्रा—बस आपको यह सब व्यर्थ की बातें आती हैं। मैं कहती हूँ आपमें प्रतिभा है.....।

बुद्धि—(गर्व से) निश्चय।

चन्द्रा—(बात जारी रखते हुए) आपमें साहस है। देखने-भालने में भी ठीक है....।

बुद्धि—बिलकुल...सब आपकी दया है चन्द्रादेवी !

चन्द्रा—तो क्यों नहीं देश की सेवा करते।

बुद्धि—मैं क्या करूँ तुम मुझको बता दो।

मुझको ऐ प्यारी तनिक निज घर का पता दो।

चन्द्रा—आप समाचार-पत्र निकालिये। देश को जगाइये। स्वर्गीय मोतीलाल घोष और चिन्तामणि की पंक्ति में जा बैठिये।

सिन्हा—अभी से.....वहीं जा बैठें ?

बुद्धि—(धीरे से) सम्पादक।.....मैं.....बात तो बुरी नहीं है।.....पर यदि मैं यह सब कर सकूँ तो.....तो क्या.....।

चन्द्रा—फिर मैं निश्चय ही आपको बधाई दूँगी। और समझूँगी कि आप सच्चे पुरुष हैं।

सिन्हा—यह नहीं साहब, कुछ और भी वादा कीजिये।

चन्द्रा—और क्या ?

जगदीश—यही कि.....यही कि ..।

वृज—कि आपका नाम चन्द्रालाल हो जायगा।

चन्द्रा—(हँसकर) देखा जायगा। पहले यह सब होने तो दीजिये। मेरा विश्वास है कि कौआ सफ़ेद नहीं हो सकता। वकील, वकील ही रहेगा।.....पर मैं चली।

बुद्धि—कहाँ ?

चन्द्रा—इय^१ टी पर ।

बुद्धि—और मेरा क्या होगा ?

चन्द्रा—जब आप सम्पादक बनेंगे तब स्वयं बधाई देने जाऊँगी ।

(जाती है ।)

बुद्धि—(धड़ाम से पलंग पर गिरकर) भई अब तो हम यहाँ से जाने वाले नहीं ।

किस अदा से हँस गई है, बिजलियाँ गिरा गई हैं, जान से मार गई है । तुम सब जाओ और हमें यहीं पड़ा रहकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने दो ।

जग०—डॉक्टर निकाल देगा ।

बुद्धि—तो अस्पताल के बाहर पड़े रहेंगे ।

सिन्हा—और सम्पादक कब बनोगे ? यदि चन्द्रा को पाना है तो भइया बुद्ध, पत्र-सम्पादन करना ही पड़ेगा । बिना सम्पादे काम चलने का नहीं । चिड़ियाँ फँसने की नहीं ।

(डॉक्टर आता है ।)

बुद्धि—आइये डॉक्टर साहब, कहिये क्या आज्ञा है ।

डॉक्टर—देखिये वकील साहब, अब आप बिलकुल ठीक हैं । पैर का लंग जो है वह मालिश करने से कुछ दिन में निकल जायगा । इसलिए अब आपको छुट्टी ।

बुद्धि—छुट्टी । —...तो मैं सन्ध्या तक चला जाऊँगा ।

डॉक्टर—सन्ध्या तक नहीं साहब, अभी जाना है । अब यहाँ एक बैरिस्टर साहब पधारेंगे । उन बेचारों के साथ भी बड़ी ट्रैजेडी हुई है ।

बृज—वह क्या ?

डॉक्टर—क्या बतायँ । वकील साहब तो गिरे मन्वान से । पर

वैरिस्टर साहब तो एक मक्किल द्वारा धराशायी हुए हैं।

बुद्धि—सो कैसे ?

डॉक्टर—अजी, एक मुकदमे में हारकर जो बाहर निकले तो मूर्ख मक्किल ने आव देखा न ताव, धड़ से किताबों का ढेर उन पर पटक दिया। वेचारों की गरदन लटक गई है। कुछ कौनक्शन भी है। कन्धे की हड्डी टूट गई है। देखिये क्या हो। आपके लिए सवारी मँगाई जाय या आई हुई है..... दस मिनट में आपको चले जाना चाहिए।.....अच्छा, गुड बाई एण्ड गुड लक।

(जाता है।)

सिन्हा—अब चल दो, भाई जान !

बुद्धि—चलता हूँ यार ! कहीं एक बार फिर दशन हो जाते तो। (नर्स आती है) तुम आ गई। तुम्हें मेरा इतना ध्यान है ? धन्यवाद धन्यवाद !

चन्द्रा—यह आपके लिए बैसाखी लेकर आई हूँ। वैसे चलना शायद सरल न हो।

(सन्नाटा। फिर एक लड़खड़ाती निराश ठक ठक ठक बैसाखी टूटे मन से वकील साहब को सम्हाले जा रही है।]

दूसरा दृश्य

(बुद्धिलाल का घर। बैठक में और मित्र बैठे हैं।)

जगदीश—भई, मेरे विचार में तो वकालत आरम्भ करने में कोई अड़चन है नहीं। अब तो वैसे भी बुद्धि बाबू की यथेष्ट प्रसिद्धि हो गई है। गाँव के लोग मचानियाँ वकील.....।

वृज—(बात काटकर) यार, क्या इस बार फिर मचान पर टाँगोगे बेचारे को।

बुद्धि—एक टाँग से मचान पर चढ़ने में कहीं दूसरी भी

न दे बैठूँ ।

जगदीश—तुम लोग व्यर्थ ही बात काट देते हो । मैं कह रहा था कि सचानियाँ वकील न सही अब लोग इन्हें लंगड़ा वकील कहा करेंगे । इस प्रकार नाम भी जल्दी ही फैल जायगा । मेरे विचार से इस छोटे से पग-दोष को हमें भगवान् का आशीर्वाद ही समझना चाहिए ।

सिन्हा—और वह सम्पादन ?

बुद्धि—जी हाँ । वह चन्द्रा की आज्ञा । क्या आप लोग यह समझ बैठे हैं कि मैं उसे पूरी न करूँगा ? भाइयो, चन्द्रादेवी मेरे हृदय की रानी हैं । उनकी आज्ञा पूर्ण करना मैं अपना सबसे प्रिय कर्तव्य समझता हूँ ।

वृज—अरे क्या वह सनक अभी बाकी है । हम तो समझे थे.....।

बुद्धि—(बात काटकर) जी, कि हम भी आप-जैसे दूध पीने वाले मजनुँ हैं । अरे भाई साहब, वह तो चन्द्रा ने बात साधारण सी कही है । यदि वह हिमालय काटकर नहर निकालने को कहती अथवा रूस से एटम बम चुरा लाने को कहती तो भी हम सर-धड़ की बाजी लगा देते.....अब तो उस सुन्दरी ने काम भी वह करने को कहा है कि जिसका नाम । सम्पादक बनो.....नाम पाओ, धन पाओ शायद असेम्बली के मेम्बर या मन्त्री बन बैठो । और सबसे ऊपर पाओ, चन्द्रा.....अय्य हय !

खुशी से उनकी मैं टेबिल का केक बन जाऊँ ।

बस शर्त यह कि वह खालें जला-जला के मुझे ॥

जगदीश—यार, तुम तो कवि हो गए ।

सिन्हा—क्यों नहीं भाई । वियोगी ही तो कविता करता है । और क्या हम तुम जैसे भकुवे करेंगे ।

वृज तो फिर तुम्हारा सम्पादक बनने का पूर्ण निश्चय है ?

बुद्धि—पूरा, अटल ।

वृज—वकालत और सम्पादकी एक साथ करो तो कैसा हो ।
अर्थात् दिन में वकील रात को सम्पादक ।

बुद्धि—और खाने-पीने सोने से वैराग्य लेकर शीघ्र ही शरीर
पात..... फिर मित्र उसे तो वकालत से घृणा है ।

जगदीश—ठीक है जी ! पत्र ही निकलने दो । हाँ तो उसका
नाम क्या रखा जाय ? पहला काम तो यही है ।...क्यों भई
बुद्धि कोई सोचा है नाम !

बुद्धि—(किन्ककर्) अभी तो नहीं । पर सोच रहा हूँ । बात
यह है कि नाम कोई अनोखा, फड़कता हुआ, सरलता से स्मरण
रहने वाला होना चाहिए ।

सिन्हा—वह मारा ! क्या सम्पादकीय बात कही है शेर ने ?
है आदमी विद्वान्..... अच्छा भाइयो पत्र का नाम यदि
माहवारी रखा जाय तो कैसा हो ।

वृज—(चौककर) माहवारी ! माहवारी क्या । यह भी कोई
नाम है ।

सिन्हा—तुम बौड़म हो । अरे माहवारी.....आपका
माहवारी, उनका मासिक, तुम्हारा मासिक पत्र । मेरा माहवारी
रिसाला । ठीक वैसे ही जैसे एक अखबार का नाम है माई
मैगज़ीन ।

जगदीश—क्या व्यर्थ बात है । पहले यह तय करो कि पत्र
दैनिक होगा या साप्ताहिक; अथवा पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक
या वार्षिक । यह निर्णय होने पर ही तो नाम रखा जा सकता है ।

बुद्धि—नाम पत्र का तय कर लिया है मैंने—‘चन्द्रा’ । उसी के
नाम पर ही । यह हमारे प्रेम का प्रमाण होगा ।

सिन्हा—यार बुद्धू, तुम हो बुद्धिमान । नाम खूब सोचा है ।
एक तीर से दो शिकार इसी को कहते हैं । अच्छा तो चन्द्रा

मासिक तय रहा ।

बुद्धि—मासिक ! मासिक क्या ? मेरा विचार तो दैनिक निकालने का है । भला मासिक से जितनी देश-सेवा हो सकती है उससे तीस गुनी दैनिक से हो ही सकती है । फिर नित्य पत्र निकलने से तो तीस दिन में चन्द्रा का हृदय पिघल ही जायगा । मासिक में तो प्रत्येक मास एक बार हो प्रेम प्रकट हो सकेगा । तो इस हिसाब से ढाई वर्ष लगेंगे ।

जगदीश—पर चन्द्रा दैनिक कुछ जँचता नहीं है । यह तो नाम मासिक के लिए ही ठीक रहेगा ।

बुद्धि—जँचने की एक ही रही । अरे भाई जान, जो उन्हें जँचे वही जँचना समझो । नाम तो पत्र का 'चन्द्रा' ही रहेगा ।

सिन्हा—पर दैनिक निकालने के लिए तो बड़ा रुपया चाहिए । रोटरी, लिनोटाइप, टेली प्रिन्टर, सम्वाददाता, सम्पादक, उप-सम्पादक, न जाने क्या क्या इकट्ठे करने पड़ेंगे । सो इतना पैसा कहाँ है ।

वृज—सुनते हैं, कम-से कम दस लाख तो लग ही जाता है, एक दैनिक पत्र निकालने में ।

बुद्धि—(गर्व से) बस इसी पर कहते हो कि हम राय देंगे । सुनिये भाई लोगो, मेरी स्कीम के अनुसार दैनिक भी निकल जायगा और खर्च भी एकदम साधारण ही होगा । मैं तो अब तक यही देख रहा था कि आप लोग क्या नई बात बताते हैं । सो देख लिया । आपके बूते की बात नहीं ।

जगदीश—क्यों न हो भाई ! हो तो बुद्धिलाल । दूर की कौड़ी लाए होंगे । हाँ, तो क्या स्कीम है मेरे मिट्टी के शेर, बताओ तो सही ।

बुद्धि—(गम्भीरता से) सुनिए । आप जब पत्र में कोई समाचार पढ़ते हैं तो यह कैसे मान लेते हैं कि यह सच ही है ?

बृज—क्या मतलब है तुम्हारा ?

बुद्धि—मतलब यह है कि मान लो तुमने आज पढ़ा कि मदुरा में हैजा फैल गया और चार सौ नर-नारी मर गए या अर्जेंटाइना में विद्रोह हो गया और सेनर करारो राष्ट्रपति बन गए। तो अब तुम्हें यह कैसे निश्चय हुआ कि ऐसा हुआ ही है।

सिन्हा—पत्र में जो छपा होता है।

बुद्धि—वह मारा। तो बस भाई साहब, यही है मेरी स्कीम का भेद। मान लीजिये हम अपने पत्र में लिखते हैं कि पटना में पोलियो फैल रहा है, या आगरा में डाका पड़ गया, तो दिल्ली वालों को हमारी बात का विश्वास होना ही चाहिए। अब वह पटना या आगरा जाकर पता लगाने से रहे। उनके लिए तो सारे समाचार सच्चे ही होंगे।

जगदीश—पर आगरा और पटना वाले तो उन्हें भूठा समझ लेंगे।

बुद्धि—कैसे समझ लेंगे ? क्या वह सारे नगर का हाल जानते हैं ? तुम्हें पता है कि इस समय तुम्हारे नगर में क्या हो रहा है ? एक बात और भी है, हमारा पत्र सारे नगरों और गाँवों में एक साथ तो बिकने से रहा। हमारे समाचार केवल उन्हीं नगरों के होंगे जहाँ चन्द्रा न जाती होगी। बस, फिर भाँडा फूटने का डर ही नहीं। और फिर भाई साहब, कोई भूठा समाचार, यदि वह असन्तोष न फैलाता हो अथवा किसी की बदनामी न करता हो, राज्य नियन्त्रण से स्वतन्त्र है.....क्यों है न स्कीम बावन तोले पाव रत्ती ? बधाई दो मेरी सूझ को। बस, सारे समाचार हम लोग लिख लेंगे और छपाकर पत्र तैयार करा देंगे। और सुनो, मेरा तो विचार चन्द्रा का साप्ताहिक संस्करण भी निकालने का है।

जगदीश—तो उसके लिए तो लेखक पैसे लेंगे। ब्लाक

वनवाने होंगे ।

बुद्धि—उसकी वचत भी सोच रखी है । सुनो, मैंने कई बार बड़े विद्वत्तापूर्ण लेख पत्रों को भेजे हैं, पर किसी ने छापे नहीं । क्यों ? क्यों ? क्यों ? केवल इस कारण कि वह प्रसिद्ध लेखकों के लेख छापते हैं, शेष सब रद्दी की टोकरी में डाल देते हैं । इस कारण मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि हम नगर के समस्त सम्पादकों की रद्दी की टोकरियों का माल नित्य खरीद लें तो हमें अनगिनत बहुमूल्य लेख इत्यादि मिल जायेंगे ।

सिन्हा—और ब्लाक.....?

बुद्धि—ब्लाक का नया-पुराना क्या ? पुराने ब्लाक कौड़ियों के मोल मिलते हैं । ले लेंगे । कौन पाठक यह याद रखता है कि वे पुराने हैं । तुम्हें याद है कि तुम्हारे पत्र में कितने ब्लाक छप चुके हैं ?

सिन्हा—नहीं ।

बुद्धि—नहीं ! तो बस बेड़ा पार है ।

सारे मित्र—भई धन्य है इस बुद्धि को ! क्या बात है ! क्या स्क्रीम खोजकर लाया है !

बुद्धि—यह सब चन्द्रा का प्रताप है । तो अब पत्र की व्यापारिक साइड कौन सँभालेगा ? विज्ञापन, कागज, विक्री आदि ।

जगदीश—वह मैं करूँगा ।

बुद्धि—ठीक । तुम्हें नित्य एक सूची देनी होगी । उन स्थानों हमारा पत्र जाता होगा । समझे ! यह अत्यन्त आवश्यक है । और पत्र का प्रचार...पब्लिसिटी ऐसी, कि धूम मच जाय । जनता व्याकुल हो उठे । खरीदारों के 'क्यू' लग जायँ । विज्ञापक हमारे दफ्तर के बाहर डेरे डाल दें । और चन्द्रा दंग रह जाय ।

बृज—यह मेरा काम रहा । तुम्हारी वकालत से बर्दिश

पब्लिसिटी न हो तो नाम बदल देना ।

बुद्धि—तो सम्पादकीय अर्थात् समाचार बनाना सिन्हा का काम रहा । इसमें मैं भी सहायता करूँगा । वैसे सम्पादूँगा तो मैं ही ।

सब मित्र—धन्य हो, धन्य हो, 'चन्द्रा' दैनिक ज़िन्दाबाद ! न हो तो एक दौर इस अवसर पर चाय का हो जाय । शुभावसर है ।

बुद्धि—क्यों नहीं । सब चन्द्रा का प्रताप है । अरे रमुआ, रमुआ, चाय तो ले आ रे ! और कुछ मिठाई भी । तो मित्रो, चाय पीकर हम लोग एक पत्र के दफ़्तर की ओर गमन करें और सम्पादकों के चपरासियों से रद्दी टोकरी-विषयक वार्तालाप पक्का कर लें, जिससे कल ही रत्न-वर्षा आरम्भ हो जाय.....मैं कल डिक्लेरेशन की कार्यवाही आरम्भ कर दूँगा ।

वृज—ठहरो, कुछ बातें अब भी तय करनी रह गई ।

जगदीश—वह कौन सी हैं ?

सिन्हा—जी हाँ ? फ़रमाइये ! आप तो कोई अड़चन ही पैदा करेंगे ।

वृज—पहली समस्या है पत्र का उद्देश्य क्या होगा ?

बुद्धि—यार, तुम हो इंडियट । सारी रामायण पढ़ गए और यही पूछते हो कि रावण कौन था । अरे उद्देश्य है चन्द्रा की प्रसन्नता ।

जगदीश—और दूसरा है, धन की प्राप्ति ।

वृज—मगर यह बातें आप डिक्लेरेशन में तो लिखने से रहे । यदि लिखा भी तो ए० डी० एम० साहब बहादुर चट से अस्वीकार कर देंगे ।

बुद्धि—क्यों ? उनका ठेका है ? करें अस्वीकार । बच्चू फ़र केस दायर कर दूँगा । नाकों चने न चबवाए तो नाम नहीं ।

सिन्हा—और क्या ? पर वकालत और मुकदमे से चन्द्रा रूठ गई तो ?

बुद्धि—हूँ यह तो ठीक है। (सोचकर) तो कह दूँगा कि जनता की सेवा और मनुष्य-मात्र की भलाई और एकीकरण एवं विश्व-शान्ति के लिए यह पत्र उत्पन्न किया जा रहा है।

जगदीश—शाबाश ! जान पड़ता है रटकर बोल रहे हो।

बुद्धि—लीजिये, यह समस्या तो सुलभी। अब तो आपके ए० डी०, एम० साहब नहीं बिदकेंगे। और भी कोई मामला है क्या ?

सिन्हा—यार, जितना तेज दिमाग आजकल बुद्ध का हो रहा है उतनी तो किसी ब्लेड की धार भी नहीं होती।

बुद्धि—भाई साहब, यह सब प्रेम का प्रताप है। वरना वन्दा किस खेत की मूली अथवा बथुआ है। मेरे मुख से चन्द्रा बोलती है। समझ लीजिये—जब मैं मेरी दहन उनका या दहन उनका जब मैं मेरी यानी कुछ उनका कुछ मेरा।

वृज—दूसरी समस्या है दफ्तर की। वह कहाँ होगा ?

बुद्धि—क्यों ? यहाँ क्या बुराई है ?

वृज—कुछ नहीं, कुछ नहीं। मैं तो केवल सब बात तय करा लेना चाहता हूँ।

[खट-खट करके द्वार खटखटाने का शब्द ।]

बुद्धि—कौन है ? आ जाओ। (एक आदमी का प्रवेश) क्या है ?

आदमी—साहब, यहाँ कोई वकील साहब रहते हैं ?

बुद्धि—क्यों ? हाँ, रहते थे। पर अब नहीं रहे।

आदमी—(चौककर) हैं ? नहीं रहे ? हरे राम, बेचारे बड़े भले मानस थे। अय्य हय, कैसी जवानी में चले गए। जान पड़ता है अस्पताल में ही स्वर्गवास हो गया। साहब, चोट भी

क्या ऐसी-वैसी लगी थी। सैकड़ों गज्र ऊँचे से इट के समान धड़ से आकर पड़े थे। मेरा तो कलेजा काँप उठा था। उफ़ ! आह, यह तो बड़ी बुरी सुनी। क्यों साहब, तेरहवीं हुई कि नहीं अभी वकील साहब की ?

बुद्धि—क्या बक रहे हो ?

आदमी—बकता क्या हूँ, साहब ? दिल के फफोले फूट रहे हैं और उनसे पानी निकल रहा है। मैं तो उनका दिलो-जान से भला चाहने वाला था। आज जब वह नहीं रहे तो उनकी एक-एक अदा याद आती है। एक-एक बात दर्द बनकर गड़ती है।

बुद्धि—अच्छा अब चुप करो। बहुत हुआ।

आदमी—साहब, वह आदमी ही एक थे। सुना है उन्होंने एलान कर दिया था कि जो चाहे खून करे, या कत्ल, वह सबकी पैरवी करने को तैयार थे।

बुद्धि—हाँ मगर.....।

आदमी—उफ़ ? यदि वह होते और मान लीजिये मैं खूनकर देता, तो वह बचा लेते।

बुद्धि—खून किसका ?

आदमी—मान लीजिये आपका ही।

बुद्धि—(चिल्लाकर) अरे बाप रे.....निकालो इसे, पकड़ो, खूनी है।

[शोर गुल—पकड़ो, निकालो, खूनी... एक शब्द—अरे खूनी नहीं साहब, पागल है। छूटकर भागकर आया है। अब लिये जाता हूँ।]

बुद्धि—उफ़फ़ोह ! मार डाला ज़ालिम ने। कहो, कुछ और भी समस्या है। नहीं, तो चलो ज़रा चाय पियें। मेरा तो दम घुटा जा रहा है।

सिन्हा—हाँ यार, हटाओ भी इस मामले को। यह चाय का समय है। बोलिये एक बार—चन्द्रा चिरंजीवी हो।

सब—चन्द्रा चिरंजीवी हो । बुद्धिलाल अमर रहे ।

रसुआ—साहब, चाय । (बरतन रखता है) ।

तीसरा दृश्य

[बुद्धिलाल का दफ्तर । वह बैठे हैं । वृजवासी का प्रवेश]

बुद्धि—आओ भई वृजवासी, पब्लिसिटी तैयार है या नहीं ?

वृज—देखोगे तो सम्पादक महोदय दंग रह जाओगे । यह रहे प्रथम पोस्टर (ढेर पटकता है) यह रहे द्वितीय (फिर ढेर) और यह रहे अन्तिम । और यह हैंडबिल्स, पत्रों में विज्ञापन के ड्राफ्ट हैं । हैडिंग्स के डिजाइन हैं । (धम-धम करके ढेर डालता है) सच मानो—कागज़ पर रख दिया है भेजा निकालकर ।

बुद्धि—(पढ़ता है) हूँ । पोस्टर नम्बर एक—आ रहा है आ रहा है क्या ? कौन ? कब ? आपका प्रिय, हमारा प्रिय, उनका प्रिय, सबका प्रिय .. चन्द्रा दैनिक और साप्ताहिक ? (बिगड़कर) गलत, चन्द्रा किसी की प्रिय नहीं हो सकती । वह मेरी प्रिय हैं । यह पोस्टर नहीं जा सकता । मैं इसे फाड़ डालूँगा । जला दूँगा ।

वृज—पर यह तो चन्द्रा पत्र की बात है ।

बुद्धि—किसी की भी हो । मैं इसे सहन नहीं कर सकता । उफ़ ! यह देखो उसका पत्र आया है । लिखा है मेरी बात मान ली । धन्यवाद । पत्र देखने पर स्वयं मिलकर बधाई दूँगी । सुना तुमने ? स्वयं मिलकर ! नहीं यह पोस्टर नहीं जायगा ।

वृज—अच्छा, और तो देख लो ।

बुद्धि—हाँ, बाकी ठीक है । नगर में धूम मच जानी चाहिए । इधर आओ मैं तुम्हें बताऊँ कि क्या करना होगा ।

('कर' करके)

[दस पाँच आदमियों के कुछ पढ़ने का शब्द । वे पोस्टर पढ़ रहे हैं—सुन्दरियों में जैसे चन्द्रा, वैसे ही पत्रों में आपका पत्र 'चन्द्रा' । फिर कट करके, हुई न हुई, जानी-अनजानी घटनाओं का विशेष विवरण सदा पढ़िये, चन्द्रा में । संसार के अछूते कलाकारों का साहित्य देखिये, चन्द्रा साप्ताहिक में.....चन्द्रा ! चन्द्रा !! चन्द्रा !!! दैनिक.....साप्ताहिक चारों ओर यही नाम गूँज रहा है । फिर 'कट' करके वापिस बुद्धिलाल के दफ्तर में ।]

बुद्धि—देखा आपने । सारी सफलता की जान है विज्ञापन । आज सारे नगर में 'चन्द्रा' की धूम है ।

जगदीश—सबके मुख पर बुद्धिलाल का नाम है ।

बुद्धि—हाँ, और तुम्हारे विभाग का क्या समाचार है जगदीश !

जगदीश—ठीक है । विज्ञापन कुछ-कुछ आ रहे हैं । तुम समझो समय तो लगेगा ही । फिर भी ठीक चल रहा है । कागज खरीद लिया है । ब्लाक ले लिए हैं । बिक्री का प्रबन्ध कर रहा हूँ ।

बुद्धि—अच्छा, जिन-जिन नगरों में बिक्री का प्रबन्ध हो गया है उनकी सूची दे जाओ और तुम जाओ ! मुझे और सिन्हा को काम करना है ।

जगदीश—यह लो । (सूची देता है) कुछ एजेंटों के डिपोजिट्स आ गए हैं । शेष के आने हैं ।

(जाता है)

बुद्धि—आओ भाई सिन्हा, समाचार बना डालें । तुमने भोर से कुछ किया है या नहीं ? भाई साहब, चार पेज के पत्र के लिए कम-से-कम ढाई-तीन पेज के समाचार तो चाहिए । देखना, सूची वाले नगरों के समाचार न बनाना ।

सिन्हा—यार, यह काम है टेढ़ा । खोपड़ी भन्ना उठी है । आज पता चला है कि संसार में वास्तव में कितने समाचार पढ़ने

योग्य होते हैं। और जब वे सारे समाचार हमों को बनाने पड़े तब तो गाड़ी अटकती लगती है।

बुद्धि—घबराओ नहीं। अभ्यास से सब हो जायगा। देखो मैं भी बनाता हूँ। बस दो घण्टे में कल का पत्र तैयार।

सिन्हा—क्यों भई यह नित्य बनाने पड़ेंगे ?

बुद्धि—हाँ। क्यों ?

सिन्हा—तब तो मस्तिष्क, सच मानो, कबाड़ी की खान—दूकान ही नहीं—हो जायगा। खोदे जाओ, और भाँति-भाँति का माल निकलता जायगा। भला भाई, नित्य हत्या, मृत्यु, बलात्कार और चोरी डाके कहाँ-कहाँ करायेंगे ? या राजनैतिक उथल-पुथल ही कब तक कराओगे ?

बुद्धि—देखो, बँटवारा कर लेते हैं। चोरी, डाके, जालसाजी मैं करूँगा। और मृत्यु, हत्या, भगाना और बलात्कार तुम करना।

सिन्हा—देखिये साहब यह अन्धेर है। भले-भले पाप तो आप करेंगे और यह भयानक काम मैं ! नहीं, नहीं, यह तुम करो और वह मैं.....।

बुद्धि—ऊँहूँ ! यह नहीं हो सकता।

सिन्हा—नहीं हो सकता, तो न हो।

बुद्धि—काम का बँटवारा सम्पादक का काम होता है। उसमें कोई गड़बड़ नहीं कर सकता।

सिन्हा—तो भैया ऐसे सम्पादक की सम्पादकी में साथ देने से मेरा इस्तीफा।

बुद्धि—यार तुम हो पागल ! (समझाकर) देखो, मान लो यदि चन्द्रा को पता चल जाय कि मैं भगाना, बलात्कार, हत्यादि करता हूँ तो वह क्या कहेगी। अभी उसे अड़्डे पर आने दो। फिर सब ठीक हो जायगा। जैसे तुम चाहोगे जुर्मों का बँटवारा कर लेंगे।

सिन्हा—खैर, यदि यह बात है तो ठीक है.....। आओ, उठाओ कलम, और करो श्री गणेश। जय चन्द्रा ! (दोनों कागज़ खड़-खड़ कर लिखने बैठते हैं। घड़ी की टक-टक से समय का बीतना जाना जाता है।)

चौथा दृश्य

(वही कमरा, कुछ समय बाद)

सिन्हा—(अंगुलियाँ चटकाकर और जम्हाई लेकर) लो यार, अब तो यथेष्ट समाचार बन चुके, ढेर का ढेर तो लिख डाला है।

बुद्धि—सुनें ज़रा, क्या लिखा है।

सिन्हा—सुनो :—

आगरा ३० अक्टूबर। कल रात यहाँ अत्यन्त ही सनसनी-पूर्ण घटना घटी। सेठ मनोहरलाल के घर में कुछ लोग घुस आए। उन्होंने बड़ी निर्दयता पूर्वक उनके नौकरों की हत्या कर दी और उनकी कन्या को ले गए। दोनों ओर से बराबर गोलियाँ चलीं। जब पुलिस पहुँची तो सेठ साहब ने रो-रोकर सारा हाल बताया और यह भी कहा कि ले जाने वाले कन्या को ले जाते समय क्या कह रहे थे। वे लोग क्यों आये थे और क्या कह रहे थे वह आप दूसरे पेज के समाचार में पढ़िये। हमें तो यही.....”

बुद्धि—दूसरे पेज के समाचार पर क्यों ?

सिन्हा—क्योंकि वे लोग डाकू थे और कन्या को ले जाते समय कह गये कि पचास सहस्र रुपये मिले बिना वह उसकी हत्या कर देंगे।

बुद्धि—तो यह सब तुमने समाचार में लिखा क्यों नहीं ?

सिन्हा—यह अभी तो तय हुआ था कि डाके का काम तुम करोगे। मैं क्यों करूँ। अब तुम लिख दो अपने समाचार में।

बुद्धि—वाह ! कहीं ऐसा भी होता है । समाचार पूरा होना चाहिए कि अलग-अलग स्थानों पर टुकड़े-टुकड़े होकर ।

सिन्हा—तो क्या किया जाय ? लिख दूँ कि सेठ मनोहरलाल के घर पर कुछ लोग आये और चले गए ।

बुद्धि—जी हाँ । 'आये भी वे गये भी वे' बस समाचार बन गया । देखो यों बनती है खबर । 'बम्बई ३० अक्टूबर । कल रात श्री कीकू भाई के घर में चोरी, डाका और जाल साजी हुई । कुछ लोग रात को चुपचाप खिड़की तोड़कर घर में घुस आए । उनका विचार चोरी करने का था । पर जाग हो जाने के कारण घर वालों के सम्मुख उन्होंने अपने-आपको कारपोरेशन के स्वास्थ्य-विभाग का नौकर बताया । आपस में कहा-सुनी के पश्चात् भगड़ा बढ़ गया और वे लोग अचानक ही डाकू बन गए । माल-मता उठाकर भाग निकले । उस भोड़-भाड़ और मार-धाड़ के कारण एक और दुःखान्त घटना हो गई । श्री कीकू भाई की वृद्धा माता का हार्ट-केल हो गया.....'

सिन्हा—(बात काटकर) गलत । यह बात मेरे समाचारों में आ सकती है, तुम्हारे में नहीं । मृत्यु करना मेरा काम है, तुम्हारा नहीं ।

बुद्धि—क्या बेकार बात करते हो । ऐसा कैसे हो सकता है ?

सिन्हा—ऐसा ही होगा । नहीं तो सब समाचार तुम स्वयं लिख लो ।

बुद्धि—(चिल्लाकर) तुम पागल हो ।

सिन्हा—तुम बुद्ध हो ।

(अन्य मित्रों का प्रवेश)

सब—क्या है ? क्या है ? क्यों गर्म हो रहे हैं आप लोग !
चः चः ऐसा भी कोड़े करता है । पत्रकार-जगत् के क्रान्तिकारियों, नेताओं, यह तुम्हें शोभा नहीं देता ।

बुद्धि—यह आप लोगों के पास पुलन्दे काहे के है ?

जगदीश—भिन्न-भिन्न पत्रों की रही की टोकरियों से निकले अनमोल साहित्य-रत्न ।

बुद्धि—(प्रसन्न होकर) मैं न कहता था । क्या-क्या माल हाथ आया ।

जगदीश—बहुत्तर लेख हैं । साढ़े तीन सौ कहानियाँ और दो सौ उन्नीस कविताएँ हैं । अभी गद्यगीत और व्यंग्य अलग नहीं किये गए हैं ।

बुद्धि—शाबाश ! अब तुम देखना 'चन्द्रा' साप्ताहिक को न केवल अनजाने लेखकों की कृतज्ञता मिलेगी, वरन् अन्य सम्पादकों को भी पता चलेगा कि केवल नाम से ही कुछ नहीं होता । भई वाह ! सुनो जगदीश, तुम एक विज्ञापन पत्रों में दे दो कि 'चन्द्रा' साप्ताहिक के पास एक वर्ष का मैटर आ चुका है । अब लेखक यह समझकर अपनी कृतियाँ न भेजें.....क्यों, है न एक नम्बर पब्लिसिटी ? क्या बात है ? किया है किसी पत्र ने ऐसा दावा ।.....धन्य हो, जय चन्द्रा !.....चलो यारो पिल जाओ, सफलता निश्चित है ।

पाँचवाँ दृश्य

[बुद्धिलाल घर में गुनगुना रहा है ।]

बुद्धि—(स्वगत) वह आयगी.....आज आयगी.....
चन्द्रा.....मेरी.....चाँद.....।

वादा किया है यार ने आने का दिन ढले ।

सूरज तुझे कसम है चला जा तले तले ।

भई, क्या बात है मेरी !

बकालत की, तो धूम मचा दी । कुछ भी हो नाम तो हो ही गया ।

और अब पत्र निकालो तो.....क्या उपाय निकाला है ! वनिक

से स्वर्घ से दैनिक निकाल डाला और वह भी किस शान का । भख मारें बड़े-बड़े पत्रकार । अरे, हम हम हैं । सूरज जहाँ जाता है चमकता ही है..... हो सकता है आते ही गले से लग जाय... तनिक सा सेण्ट गले के लगा दूँ, तो ठीक रहेगा । (सेण्ट स्प्र करता है ।) विवाह कब का रहे ? पर यह तो उनकी प्रसन्नता पर निर्भर है । अपनी राय में तो आज ही, अभी ही..... पर वह आयँ भी..... सिगरेट... बिना सिगरेट के मनुष्य जँचता नहीं । कश लगाकर धुँआ उड़ाने से कुछ रौब और ही पड़ता है । और पान..... उनके लिये उपहार..... सुन्दर हैं यह अँगूठी, कैसा चमक रही है यह हीरे का नग..... उनकी गोरी-गोरी अँगुली पर खूब खिलेगा..... ।

[कुछ कोलाहल]

बुद्धि—यह क्या है ? कैसा कोलाहल... अरे, यह तो पास ही आ रहा है । न जाने क्या बात है (दरवाजा जोर से खट-खटाय जाता है । इस सीन में आगे बार-बार बैक ग्राउण्ड में दरवाजा खुलता रहता है, शोर होता रहता है और लोग भीतर आते हैं ।) कौन हैं ? आ जाओ । (कई आदमियों के आने का शब्द) कौन हो तुम लोग ? क्या चाहते हो ?

एक आदमी—जी आपका ही नाम बाबू बुद्धिलाल है ? चन्द्रा के सम्पादक ?

बुद्धि—हाँ । पर.....

आदमी—हम लोग अदालत के आदमी हैं । आप पर मान हानि का समन लाए हैं । सेठ मनोहरलाल की ओर से.....

दूसरा—और मैं लाया हूँ सेठ कीकू भाई की ओर से....

तीसरा—और यह है महाशय नन्दलाल पटने वालों का समन.....

चौथा—यह है जेठा भाई का जूनागढ़ से.....

बाकी लोग—यह है समन यह है समन... यह रहा.....
दस्तख़त कीजिए। शीघ्रता से.....। (कुछ और लोग आते हैं)।

बुद्धि—(घबराया हुआ) अरे ठहरो तो..... ठहरो तो.....
हाँ आप लोग कौन हैं ?

नया आने वाला—आपको कलकटर साहब ने याद किया है,
अभी।

बुद्धि—सुनो तो सही, बात तो सुनो..... कैसी गर्मी हो
रही है..... शान्त तो रहो। सब लोग..... (मोटर लारी के
आने और रुकने का शब्द। फिर कई आदमियों के बोझ से लदे आने
की आहट। वे धम-धम करके बंडल पटकते हैं।)

बुद्धि—वह क्या है ?

आने वाला—साहब डाकखाने के पार्सल हैं। अखबार के
पार्सल जाते तो देखे थे पर आते आज ही देखे हैं। शायद वापिस
आ रहे हैं एजेण्टों के यहाँ से। पर मार डाला हम लोगों को।
मनों बोझ है।..... उफ़..... साहब पानी तो पिला ही दीजिये।
भगवान् कसम मर गए हैं। (कुछ लोग और आते हैं)

आने वाला—बुद्धिलाल जी ?

बुद्धि—हाँ, क्या है ?

आने वाला—साहब हाँडालाल कूँडामल कागज़ी का बिल है।

दूसरा—और यह निर्वाण प्रेस का बिल है।

तीसरा—सरकार ठेलों के पैसे मिल जायँ।

चौथा—फरनीचर का बिल है, साहब।

बुद्धि—बिल, बिल, बिल, ठहरो, ठहरो सुन तो लो। शोर मत
करो। यह सम्पादक का दफ़्तर है। मछली बाजार नहीं है। ज़रा
धीरे बोलो। पसीना सुखा लो।

डाकखाने वाला—साहब पानी मिल जाय।

बुद्धि—हाँ, पानी..... हूँ..... हूँ..... अभी देाया पानी !

(जाता है।) (स्वगत) बस भैया बुद्धू, ऐसे में भाग निकलो। कहीं चन्द्रा आ गई तो राज़ब ही हो जायगा। कल तो इन सब को देख लूँगा। इन्होंने समझा क्या है? हुँह! पर इस समय तो..... बस चलकर मित्रों की मीटिंग करनी चाहिए। और चन्द्रा को ढालना चाहिए। (चलता है। किसी से टकराता है।) अँय, कौन, चन्द्रा?

चन्द्रा—जी हाँ। आप ही से मिलने आई हूँ, अपने वादे के अनुसार। आपने सचमुच वादा पूरा किया। और अब मैं... अब मैं.....

बुद्धि—अच्छा, अच्छा, पर देखिये... इस समय तो...

चन्द्रा—चलिये न, भीतर चलें। बातें करेंगे। आप कहाँ भागे जा रहे हैं। मैं न जाने दूँगी।

(पीछे शोर)

बुद्धि—नहीं, नहीं, वहाँ बड़ी गर्मी है। वहाँ नहीं जा सकता मैं। मुझे दूर जाना है। वहाँ से दूर... आपके आने का धन्यवाद। फिर मिलियेगा।

चन्द्रा—पर मैं आपसे कहने आई थी कि कि... चलिये न मैं भी आपके साथ च

बुद्धि—(घबराकर) नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। कभी नहीं।

चन्द्रा—(अदा से) मैं चलूँगी। छुड़ाइये हाथ तो जानूँ।

बुद्धि—(तीव्रता से) ओह! हाथ छोड़िये जरा। एक मिनट को। इधर आइये ज़रा!

(पकड़कर द्वार के पीछे करके द्वार बन्द कर देता है। और भाग जाता है। चन्द्रा द्वार धड़धड़ाती रह जाती है।)

तुम रहो यहीं चन्द्रा! तुम्हारा सम्पादक तो अब गया।

(भागता है)

चन्द्रा—सुनिये...सुनिये...मैं कहने आई थी...मुझे आपसे वादा करना था कि.....

(शोर एकदम तेज़ हो जाता है)

एक—भाग गया ।

(भाग गया—का शोर सब करने लगते हैं । फिर सब चिल्लाते हैं—
वह रहा, वह रहा । और सब पीछा करते हैं ।)

चन्द्रा—बात क्या है ? क्या हुआ ?

एक—आप कौन हैं ?

चन्द्रा—मैं इनसे मिलने आई थी ।

दूसरा—तो फिर कल अदालत में मिल लीजिएगा । वह लीजिए, पकड़े गये ।

[शोर, जो तेज़ होकर धीमा हो जाता है]

समाप्त

बीमारी

पहला दृश्य

[बुद्धि स्वरूप का ड्राइंग रूम, कमरा साधारणतः ठीक ही है, जैसा मध्य-वर्ग का होना चाहिए। पर, कमरे से अधिक महत्त्वपूर्ण उसके मालिक हैं। उनका रंग काला है, आँखें छोटी हैं, बाल मानो सन के बने हों। अपनी विद्या, बुद्धि पर पूरा-पूरा उनको अभिमान है। कद साधारण से कम ही है। उस पर जब वह अकड़कर चलते हैं तो देखते ही बनता है। बी० ए० एल०-एल० बी० हैं। इस समय वह बड़ी चिन्ता में जान पड़ते हैं। सहसा बराबर का द्वार खुलता है और उनके मित्र—सिन्हा, जगदीश, बृजवासी, भीतर आते हैं।]

बुद्धि स्वरूप—(उनको देखते ही, बिगड़कर) उफ़ ! आप लोगों को अब फुरसत मिली है आने की। कौन सो चाँदमारी कर रहे थे, ज़रा पता तो चले। तीन घण्टे हुए तब नौकर भेजा था। सो अब आप लोग आए हैं, तिस पर दोस्ती का यह दावा है कि जिसका नाम... मैं आप लोगों से सख्त नाराज हूँ। भयंकर रूप से।

सिन्हा—अरे ज़ालिम कुछ हमारी भी सुनेगा, या अपनी ही ओटे जायगा।

बुद्धि—क्या सुनूँ ?

जगदीश—भई गुस्से को थूक दो। न थूक सकी तो पी लो।

बुद्धि—(और भी बिगड़कर) चः !

बृजवासी—‘भवें तनती हैं खञ्जर हाथ में है तन के बैठे हैं ।

किसी से आज बिगड़ी है जो वह यों बन के बैठे हैं ॥’

बुद्धि—आप लोग बेकार हैं। यहाँ इतनी बड़ी स्कीम सोची है कि हम सब मालामाल हो जाएँ। पर आपको कालतू बातों से समय हो तब तो। जाइए हम भी चुप होकर बैठ रहेंगे।

सिन्हा—यार, तुम चुप न हो जाना, नहीं तो सारा गुड़-गोबर हो जायगा। फिर हम लोगों के यह ठाली दिन कैसे कटेंगे? काम-धन्धा तो कुछ है नहीं। नौकरी देने की लोगों ने कसम खा रखी है। बिज़नेस के लिए न सूरु है, न पैसा।

जगदीश—ऐसे समय में तुम ही तो हमारी अंधेरी दुनिया के उजाले हो। तुम भी बत्ती बुझाकर बैठे रहोगे तो हमें आत्म-हत्या के सिवा कोई राह न रहेगी।

बृजवासी—अरे यार, अब मान भी जाओ। बहुत अकड़ चुके। अब चले चाय का दौर और ज़वान की चक्की।

सिन्हा—ले अब ज़रा मुस्कुरा दे। मेरी जान की कसम। देख तो सही हम लोगों ने तेरे लिए क्या कुछ नहीं सहा है। क्या कुछ हम लोगों ने साथ साथ नहीं किया।

बुद्धि—हाँ, यह तो है वह कालत ! वह पत्रकारिता !—अब-हय !—खैर, तो अब हम मान जाते हैं। लेकिन आगे से ऐसी बेर न हो। ज्यों ही बुलाया जाय तुरन्त आया करो।

बृजवासी—बिलकुल अलाउद्दीन के जिन की भाँति।

सिन्हा—इस मेल-मिलाप के अवसर पर... (चिल्लाकर) कलुआ, अरे कलुआ।

कलुआ—(दूर से) जी सा'ब। आया रहन। चीख-चीखकर गरा न फारो। कान में दरद होत है। का जानी ससुर कहाँ-कहाँ से आ जात हैं। औ मजा यह कि चुप नहीं बैठ सकत पल-भर। आये नाहीं कि पुकार-पुकार के घर उठा लेत हैं.....।

[आता है।]

बुद्धि—क्या बक रहा है ?

कलुआ—अरे सा'ब, हम पंच कहूँ बक सकित हैं। राम का नाँव लेव। हम तो करमन का रोय रहे थे।

बुद्धि—क्यों ?

कलुआ—तुम-जैसे ठलुआ वाबू के यहाँ चाकरी करे पड़ी, और का ?

सिन्हा—नालायक कहीं का। तुम्हे बात करना भी नहीं आता।

बृजवासी—निकाल दो इसे।

जगदीश—नौकरों की क्या कमी है।

बुद्धि—(कलुआ से) तू जा, चाय बना ला। बहुत बड़-बड़ करना ठीक नहीं है। (कलुआ के जाने पर) मित्रो, निकाल तो मैं इसको दूँ, पर बाकी छः महीने की तनख्वाह देने का प्रश्न है।

सिन्हा—इस बात ने तो समस्या का रूप ही बदल दिया। अब श्रीयुत कालूराम जी को कौन निकाल सकता है।

बुद्धि—इसीलिए तो आप लोगों को बुलाया है। देखिए, अब हम लोगों को कुछ-न-कुछ करना ही होगा। मैंने स्कीम सोच ली है। बस, हल्दी लगे न फिटकरी और रंग ही रंग लो। लोग भ्रष्ट मारें और अपनी जेब का पैसा आपकी जेब में डालें।

बृजवासी—देखिए भाइयो, मैं नाई की दूकान नहीं कर सकूँगा।

बुद्धि—(चिल्लाकर) किसने कहा है तुम हज्जाम बनो ? तुममें वह बनने की भी योग्यता नहीं है। तुम तो बस पकी-पकाई खा सकते हो। स्कीम मैंने अपने भेजे से निकाली है। तुम्हें तो केवल रुपये फोड़ने हैं। नहीं इरादा हो तो चलते बनो।

बृज—तब ठीक है। आप समझाइये अपनी स्कीम।

बुद्धि—क्या खाक समझाऊँ ? तुम तो हथे पर से ही बात काटते हो। मेरा तो मन करता है तुम सब लोगों को छोड़कर

अपने आप ही इस पर कार्य करना आरम्भ कर दूँ। फिर जब एक दिन मुझे मालामाल देखोगे तो पता चलेगा। हाँ !

सिन्हा—अरे भैया बुद्ध, अब क्रोध को विसर्जन कर भी डालो और अपने मस्तिष्क की नई उपज की वानगी हमको भी चखने दो। चलो, अब मान भी जाओ !

बुद्धि—अच्छा, तो सुनो। पर टोकना मत। समझे।

सबलोग—बिलकुल नहीं। एकदम नहीं। तुम कहो भी तो।

बुद्धि—आप लोगों ने राजस्थान देखा है ?

[सब चुप रहते हैं ।]

बुद्धि—क्यों देखा है कि नहीं ? अरे, बोलते क्यों नहीं ? क्या मैं कुत्ता हूँ कि भौंकता रहूँ ?

जगदीश—तुमने ही तो कहा था कि टोकना मत। वैसे आप भौंकें क्यों ? गुर्राइये, काटिये !

बुद्धि—चुप। यदि बुद्धि की बात नहीं कह सकते, तो उसकी समझो और सुनो।

वृज—सुनाइए दयानिधान, सुनने के लिए ही आपके यह गण इस समय यहाँ एकत्रित हुए हैं।

बुद्धि—वह कौन सी चीज़ है जो राजस्थान में बहुत कम पाई जाती है और जिसकी आज के युग में प्रत्येक मनुष्य को आवश्यकता पड़ती है ?

सिन्हा—(उछलकर) भई, यह तो पहेली है उस्ताद। क्या यही बूझने के लिए हम लोगों को कष्ट दिया है ?

जगदीश—तो होने दो पहेली-सेशन ही। मुझे भी दो-चार आती हैं। पूछूँ ?

[कलुआ चाय लेकर आता है ।]

कलुआ—का जाने ई चाय में का रखवा है। जब देखो चाय पिये जात हैं, ससुर हाथ जर गवा सो अलग।

बुद्धि—अच्छा, अच्छा, चाय रखकर तू जा, भाग ।

कलुआ—जाइत है, जाइत है । तुम अपना खुसुर-पुसुर कैसे लेव । मुदा तनखा ससुर जाने कबों मिली कि नाहीं ।

[जाता है]

बुद्धि—हाँ, बताइए न आप लोग । नहीं बता सकते ?

जगदीश—मैं बताता हूँ । राजस्थान में कमी है पानी की ।

सिन्हा—नहीं, चाय की ।

बृज—अरे, नहीं, फिल्मस्टार्स की ।

बुद्धि—मुखे हैं आप लोग । राजस्थान में कभी है यातायात की । ट्रांस्टोपेट की । रेलें कम, रास्ते लम्बे—अब लोग सफ़र करें तो कैसे ?

जगदीश—न करें । क्या ज्योतिषी ने सफ़र करना बताया है ?

बुद्धि—मैं कहता हूँ, बढ़ करें । अवश्य करें । हजार बार करें । लाख बार करें । जितना वह सफ़र करेंगे, उतना ही हमारा लाभ है ।

सिन्हा—लाभ है ?

बुद्धि—है, सौ बार है ।

सिन्हा—तो दिलवाइये हम लोगों का हिस्सा ।

बुद्धि—उफ़फ़ोह ! अभी स्कीम चालू हुई नहीं और लाभ माँगने को तैयार हो गए । पैठ लगी नहीं और गठकटे मौजूद हैं । सुनिये, मेरी राय है कि हम राजस्थान में मोटर - सर्विस स्थापित करें । बस फिर देखिए—बसें दनादन भरा हुई इधर से उधर फिरेंगी, और लोगों की जेबों का रुपया हम लोगों की जेबों में होगा । कदो कैसी है स्कीम ?

बृज—मगर बस के लिए पैसा कहाँ से आयगा ? फिर शायद सरकारी परमिट की भी आवश्यकता होगी, वह कहाँ से मिलेगा ?

जगदीश—हमारी कुल पूँजी तो शायद दो चार सौ रुपए हो तो हो । उसमें तो आधी बस भी आनी कठिन है ।

सिन्हा—एक-आध पहिया तो आ ही जायगा। फिर सुविधा-नुसार कवाड़ी के यहाँ से भिन्न-भिन्न भाग खरीदते रहेंगे। एक दिन बस तैयार हो ही जायगी। लग जायँ पचास वर्ष। उससे क्या? हमें कौन-सी जल्दी है क्यों भैया, स्कीम के जन्मदाता महोदय?

बुद्धि—(अकड़कर) आप लोग कुछ नहीं समझते। यह स्कीम मेरी है, इसलिए ऐसी शानदार है कि जिसका नाम। देखो, मेरे एक मित्र हैं राजस्थान के बड़े अफसर। उनसे कहकर दो रूट्स का परमिट ले लूँगा। फिर एक रूट के परमिट को बेचकर जो रुपया आयगा उसे अग्रिम देकर बस लेली जायगी। बाकी रुपया, आमदनी में बचाकर, धीरे-धीरे किरतों में दे दिया जायगा। क्या समझे?

जगदीश—(असमंजस से) हूँ!

बुद्धि—हूँ नहीं, हाँ कहो। और इसी प्रकार यदि हम लोग लगे रहे तो राजस्थान के बस-राजा, और एक दिन भारत के बस-सम्राट् हो जायँगे।

सिन्हा—हियर, हियर! पर भाई यह बस-राजा और बस-सम्राट् कुछ जँचा नहीं। मेरा प्रस्ताव है कि नाम कुछ और सोचे जायँ। इनसे तो कुछ ऐसा लगता है मानो किसी आते हुए राजा या सम्राट् को लोग जबरन रोक रहे हों, और वह रस्सी तुड़ा कर भाग रहा हो।

बृज—नहीं भाई, यह ठीक है। इससे हमारी कम्पनी का राष्ट्रीय गान बनाने में सरलता रहेगी। वह कुछ इस प्रकार हो सकता है—

बस मेरे राजा, बस कर, बस कर।

काफ़ी तो अब पीली है, तू चाय को बस कर।

चलने वाले देख के चलना, राह बड़ी लम्बी है।

लल्लू की माँ से मिलना हो, तू ठहर जा, बस कर!

बुद्धि—उफफोह ! बन्द भी करो इस बकवास को । स्टौप इट ।
तो भाइयो, इस समय समस्या है मेरे राजस्थान जाने की ।

[गम्भीर भाव से चुप होता है]

सिन्हा—(किष्क से) चिट्ठी-पत्री से काम नहीं चल सकता ?

जगदीश—अजी, उससे तो लोगों के घर भी आबाद हो जाते हैं । यह तो केवल परमिट का मामला है ।

बुद्धि—क्या वाहियात बात है । किसी ने अपने मरे बिना भी कभी स्वर्ग देखा है । आप लोग डरें नहीं जो भी कुछ आप लोग इस समय देंगे वह आपके नाम से कम्पनी के खाते में लिखा जायगा । बस आप लोग सौ रुपयों का प्रबन्ध तुरन्त कर दें ।

सब लोग—(भरी आवाज़ में) अच्छा भाई । देंगे...
पर शिकायत यही है कि तुम्हारे साथ का आनन्द राजस्थान वाले लूटेंगे, हम यहाँ तरसेंगे ।

बुद्धि—(पिचककर) अरे, तो दो-चार दिन की ही तो बात है ।

बृज—मेरी राय है कि कम्पनी का नामकरण कर लिया जाय ।

जगदीश—हाँ, पर नाम ऐसा हो, ऐसा हो, कि जो बस—क्या नाम है उसका ?—नाम ही हो ।

सिन्हा—क्या बात कही है ? ज़रा सोच डालें कि ऐसा नाम क्या हो सकता है ? हाँ भाइयो, अपने दिमागों के स्विच दबाओ तो ज़रा ।

बृज—राजस्थान बस सर्विस कैसा रहेगा ?

बुद्धि—छिः यह भी कोई नाम है ? कोई भी आदमी यही नाम रखता । फिर हम लोगों की ही क्या विशेषता हुई ? नाम ऐसा हो जो अनोखा हो, आकर्षक हो और जनता की भावनाओं को अपील करता हो । मेरी राय है कि कम्पनी का नाम हो—

‘राजस्थान बस सेवा अमर्यादित’। कैसा रहेगा ?

जगदीश—बाप रे !

सिन्हा—इसका मतलब कौन समझेगा ?

बृज—नाम फिर रख लेंगे। इस समय तो मिट्टी के शेर को चलता करो। नाम में रखा ही क्या है ? देखो न अपने बुद्धि लाल के नाम को ही !

बुद्धि—क्या मतलब है तुम्हारा ?

बृज—कुछ नहीं। कुछ नहीं। अब चलने की तैयारी करो।

[सब लोग उठ खड़े होकर इधर-उधर चलते हैं ।]

दूसरा दृश्य

[ट्रेन चली जा रही है। एक स्टेशन पर रुक कर ज्यों ही वह चलता है, एक स्त्री बुद्धि-स्वरूप जो कं डिब्बे में आती है। निश्चय ही वह युवती भी है, और सुन्दरी भी ।]

युवती—(बुद्धि से) क्या मैं यहाँ बैठ सकती हूँ ?

बुद्धि—(खिलकर) क्यों नहीं ? क्यों नहीं ? सर आँखों पर बैठिये ।

युवती—जी नहीं, वहाँ नहीं, मैं बर्थ पर ही बैठना चाहूँगी ।

बुद्धि—बैठिए। बैठ जाइए। दुपट्टा उतार दीजिए। सेण्डल खोल डालिए। जी चाहे तो लेट जाइए। चाहे मेरी ओर पाँव कर लीजिए, चाहे सिर। जो जी चाहे। ‘सरे तसलीम ख़म है जो मिजाजे यार में आए।’

युवती—आप बड़े सज्जन जान पड़ते हैं। और जिन्दा-दिल भी ।

बुद्धि—सज्जन तो मैं बचपन से रहा हूँ। जन्म से। यों कहिए—मेरा मिजाज लड़कपन से आशिकाना था। और दिल जो अब तक मुर्दा था, अब आपको देखकर जिन्दा हो गया है।

आप आराम से बैठिए न ! रात भर का सफर है । कुछ खाइएगा ? ...हाँ, क्या मैं आपका शुभनाम जान सकता हूँ ?

युवती—जी, धन्यवाद । (पाँच बर्थ पर रख लेती है ।) इस समय तो भूख है नहीं । और मेरा नाम है मनोरमा स्टीवेन्स ।

बुद्धि—वाह ! वाह ! तो आप ईसाई हैं । क्या कहने हैं ! मैं तो, सच मानिये, ईसाइयों को इतना पसन्द करता हूँ कि जैसे... जैसे...कुत्ता हड्डी को ।.....कहिए कैसी कही ?

मनोरमा—ख़ूब ! आप बड़े हैंसोड़ हैं । आपसे मिलकर तबियत बड़ी ख़ूश हुई । वरना सफर में ऐसे-ऐसे बाँगरू मिलते हैं कि जिनका नाम ।...हाँ, आपका शुभ नाम तो पता ही न चला ।

बुद्धि—जी, अपना ही समझिए मुझे तो । नाम तो पिता जी ने गुण देखकर रखा था । बिलकुल साधारण सा है—बुद्धिलाल ।

मनोरमा—अच्छा नाम है ।

बुद्धि—आपकी नज़र है ।

मनोरमा—(चौंककर) यानी आप हमसे शादी करना माँगता है ?

बुद्धि—(घबराकर) जी ?

मनोरमा—आपने अभी हमको प्रोपोज़ किया है । और प्रोपोज़ करने के बाद कोई आदमी वापिस नहीं कर सकता । समझे ?.....अच्छा, आप क्या करते हैं ? कहाँ रहते हैं ?

बुद्धि—(रौब से) मैं बिज़नेस करता हूँ । 'राजस्थान बस यातायात सेवा अमर्यादित' का डायरेक्टर हूँ ।

मनोरमा—यह क्या है ? मैं कुछ नहीं समझी । पर आपका मकान किधर है, डार्लिंग ?

बुद्धि—दिल्ली में । यह रहा मेरा कार्ड ।

मनोरमा—(कार्ड लेकर) ठीक है, डार्लिंग । अब हमको किस करो । मैं तुमसे शादी करूँगी । तुम मुझको पसन्द हो ।

बुद्धि—तुम भी मुझको पसन्द हो । लेकिन शादी।

मनोरमा—डालिंग, तुम बहुत मजाक करते हो । यहाँ सारे कम्पार्टमेण्ट के लोग जानते हैं कि हमारी शादी होगी । कब होगी यह मैं तुमको दिल्ली आने पर बताऊँगी । अभी तो मुझे अगले ही स्टेशन पर उतरना है । तब तक हम तुम लव-मेकिंग करें ।

बुद्धि—लव ! यानी प्रेम ! यानी तुमको सचमुच मुझसे प्रेम है । तुम मेरे ऊपर मर मिटी हो । एक ही जलवे में सौदाई हो गई हो । सचमुच ?

मनोरमा—सच ।

बुद्धि—तब तो यह हमारी जन्म-जन्म की प्रीति है । न जाने किस युग से इसे पालता आ रहा हूँ...पालता आ रहा हूँ शायद तुम रोम की राजकुमारी होगी, और मैं तुम्हारा दास । या तुम लैला होगी, मैं मजनूँ । तुम शीरी, मैं फरहाद । (बोलने में तेज़ी आती जा रही है ।) तुम सोहनी मैं महीवाल । तुम रोमियो मैं जूलियट नहीं नहीं इसका उलट ।

मनोरमा—(गले में बाँहें डालकर) ओह ! तुम सचमुच बड़े अच्छे हो । पीटर से भी और पॉल से भी ।

बुद्धि—(झोंक में) हाँ, मैं सबसे अच्छा हूँ । सुन्दर हूँ । जवान हूँ । व्यापारी हूँ ।

मनोरमा—स्वीटहार्ट ! माई लकी स्ट्राइक !

बुद्धि—(झुंशी से गाने लगता है ।)

देखा जो हुस्ने यार तो तबियत मचल गई ।

आँखों का था क्रुसूर छुरी दिल पै चल गई ।

[बडबे में शोर—‘चुप रहिए साहब, सोने दीजिए’, इत्यादि]

बुद्धि—(धीरे से) बड़े गँवार हैं यह लोग ।

मनोरमा—(ज़ोर से) यह लोग इतना भी नहीं समझते कि हम लोगों की शादी होने वाली है । (धीरे से) अच्छा, डालिंग, अब

मुझे उतरना है ।

बुद्धि—अभी से ? तुम तो चली जा रही हो, पर जो बीमारी मुझे दिए जा रही हो उसका इलाज कौन करेगा, यह तो बता जाओ !

मनोरमा—(हँसकर) मैं । और कौन ? दिल्ली पहुँचकर । अच्छा, तब तक दिल को सँभालने के लिए कोई निशानी तो दे दो ।

बुद्धि—बोलो क्या दूँ ।

मनोरमा—यह अँगूठी । जब तुम्हारी याद आयगी तो यही मेरे दिल को ढाढ़स देगी ।

बुद्धि—लो । (देता है) और तुम्हारी निशानी ?

मनोरमा—मेरा प्रेम ! और क्या ? अच्छा, टा ! टा !

[गाढ़ी रुकती है और वह उतर जाती है ।]

बुद्धि—(रुआँसा होकर) जाओ, देवदास ! पर याद रखना—

खूँशी से तेरी मैं टेबिल का केक बन जाऊँ

बस शर्न यह कि तू खा ले जला जला के मुझे ।

मनोरमा—अवश्य खाऊँगी ।

[जाती है । गाढ़ी चलती है ।]

बुद्धि—(लम्बो साँस लेकर ।)

चले गए बालम—

मुझे, हाय, अकेला छोड़ गए बालम ।

[गाढ़ी चलते-चलते दूर हो जाती है ।]

तीसरा दृश्य

[जयपुर—सड़क । बुद्धिस्वरूप कोठियों के नम्बर देखते आ रहे हैं ।]

बुद्धि—(स्वतः) तेरह, बारह, ग्यारह । ठीक है, यही तो है

जयपालसिंह की कोठी । पर यह तो वन्द जान पड़ती है । (घंटी बजाता है) कोई उत्तर नहीं । ताला भी पड़ा है । कहाँ चला गया यह ? न हो पड़ोसी से पूछा जाय । शायद कुछ पता चले ।

[चलकर पड़ोस की कोठी में पहुँचता है ।]

अरे भाई कोई साहब हैं यहाँ पर ? ए, बूढ़े साहब !

बूढ़ा—क्या है ?

बुद्धि—जयपालसिंह कहाँ होंगे ?

बूढ़ा—बीमार पड़े हैं । हस्पताल में ।

बुद्धि—अरे ! क्या बीमार हैं ?

बूढ़ा—पता नहीं ।

बुद्धि—अच्छा !

[चलता है ।]

बुद्धि—(चलते चलते) यह बुरा हुआ । बेचारा हस्पताल में है । न जाने क्या दशा होगी । चलो, देख तो लूँ ।

(जाता है । हस्पताल के बाहर बड़ी भीड़-भाड़ है । बुद्धिस्वरूप क्लर्क के सामने रुकता है ।)

क्लर्क—(अत्यन्त व्यस्तता से) किनसे मिलना है आपको ?

बुद्धि—जयपालसिंह जी से ।

क्लर्क—उनसे आप नहीं मिल सकते ।

[इतना कह कर दूसरे से—]

हाँ, आपको किनसे मिलना है ?

बुद्धि—(बात काटकर) पर क्यों नहीं मिल सकते ? भाईजान, मुझे उनसे बड़ा विशेष काम है । देहली से चलकर आया हूँ ।

क्लर्क—जी, आप उनसे बिलकुल नहीं मिल सकते । डॉक्टर-साहब ने कड़ी ताकीद की है ।

बुद्धि—(चिन्ता से) उनकी हालत तो ठीक है ?

कलकं—हाँ, ठीक ही है। अच्छा, मुझे ज़मा कीजिए।

बुद्धि—(अलग हटकर) हो न हो विचारा सांघातिक रूप से बीमार है। चलूँ, उसकी ससुराल में देखूँ। वह भी तो यहीं है।

[जाता है। कुछ देर बाद ससुराल के बाहर रुककर।]

अरे, यहाँ तो ताला पड़ा है। यह सब लोग कहाँ चले गए ? देखूँ शायद किसी पड़ोसी को पता हो।

[पड़ोस के मकान में आवाज़ देता है।]

कोई साहब हैं ? .. अरे साहब ज़रा सुनियेगा।

एक स्त्री कंठ—(भीतर से ही) कौन हैं ?

बुद्धि—जी, मैं हूँ श्री बुद्धिस्वरूप। देहली से आया हूँ।

स्त्री—हम तो इस नाम के किसी आदमी को नहीं जानते। घर में मर्द हैं नहीं।

बुद्धि—बस मुझे तो यह पृछना था कि आपके पड़ोसी कहाँ गए हैं।

स्त्री—वह तो यहाँ से चले गए।

बुद्धि—लेकिन उनकी तो यहाँ नौकरी थी।

स्त्री—पता नहीं। अब वह यहाँ नहीं रहे। सब लोग चले गए।

बुद्धि—पर कहाँ ?

स्त्री—हमें क्या मालूम ?

[भड़ाक से द्वार बन्द कर लेती है।]

बुद्धि—(स्वतः सबक पर) यह तो राज़ब हो गया। जयपाल बेचारा ऐसा बीमार। और ऐसे समय में सास, ससुर, घर वाली सभी तिड़ी। मान लो ससुर साहब की नौकरी छूट भी गई थी, तो भी उनका कर्तव्य था कि दामाद की देख-रेख करते। या कम-से-कम स्त्री को तो यहाँ रहना ही चाहिए था। जान पड़ता है रो

को सांघातिक समझकर वह भी चलती बनी । ...वाह री दुनिया ! संकट के समय, सात फेरे लेने वाली भी साथ नहीं देती ...क्या जाने बेचारे के माँ बाप को भी समाचार मिला होगा या नहीं ... उफ़ ! परदेस, अकेलापन, भयानक रोग ...मैं ही रह जाता, पर मेरे पास तो अब रुपए भी समाप्त हो रहे हैं ! ...न हो, जयपाल के पिता जी को तार दे दूँ । यही ठीक होगा ।

[जाता है]

चौथा दृश्य

[बुद्धि-स्वरूप का घर, वह मित्रों को सारा हाल सुना रहे हैं ।]

बुद्धि—सो भाइयो, इस प्रकार मेरा व्यापारिक मिशन तो असफल रहा । पर यह आप अवश्य कह सकते हैं कि मेरे जाने से गरीब जयपाल को कुछ लाभ हुआ । बेचारे के माता-पिता को समाचार मिल गया, नहीं तो परदेस में अकेला पड़ा तड़पता रहता ।

सिन्हा—भई, क्या दुनिया है ! सगी बीवी पति को छोड़कर भाग जाय ! कमाल है ।

जगदीश—अरे भई, सौ रुपये हम लोगों के गए सो गए । पर एक भलेमानस का काम बना यही क्या कम है ।

बृज—सारा हाल सुनकर मेरा तो मन करता है कि संन्यासी हो जाऊँ । (कुछ रुककर) पर यार बुद्धू, तुम जयपुर गए भी थे या वैसे ही पख लगाई है ?

बुद्धि—(बिगड़कर) तो आप मुझे झूठा समझते हैं ?

बृज—एक-आध बार आपको सच पर रंग रोगान करते देखा तो गया है ।

बुद्धि—मैं तुम्हें प्रमाण दे सकता हूँ कि

[द्वार पर खट-खट का शब्द । दो भिन्न-बाद कल्लुआ सार क्षेत्र

आता है ।]

कलुआ—ई ससुर तार आवा है ।

बुद्धि—लाओ इधर । (तार लेकर) न जाने किसका होगा ? क्यों भाई लोगो, कहीं से तार आने की सम्भावना थी क्या ?

सिन्हा—यार खोलकर देख लो न ।

बुद्धि—यह भी ठीक ही है । (तार खोलकर पढ़ता है ।) हूँय !

जगदीश—(लपक कर) क्या हुआ ? क्या हुआ ? खैर तो है ? जयपाल के पिता जी का तो नहीं है ।

बुद्धि—(धीरे से) उसके ससुर का है ।

जगदीश—क्या लिखा है ? उसकी हालत कैसी है ?

बुद्धि—लो, पढ़ लो ।

जगदीश—(पढ़ता है ।)

‘मैं आपके जयपाल के पिता को दिए तार को अपनी और पुत्री की मानहानि समझता हूँ । आपकी बदतमीजी के कारण जो अपमान और हानि हुई है उस विषय में आपसे मिलने आ रहा हूँ ।
भूसामल’

पर यह क्या बात हुई । तुम्हारे तार में मानहानि का प्रश्न ही क्या था ? (रुककर) सचमुच बताओ तुमने जयपाल के पिता को क्या तार दिया था ?

बुद्धि—कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं । जो सच बात थी मैंने लिख दी थी । यह लिखा था—

‘जयपाल भयानक बीमार है । उनके ससुर नौकरी-से-डिसमिस हो गए हैं । वे अपने परिवार और आपकी पुत्रवधू सहित किसी अनजान स्थान को चले गए हैं ।

सिन्हा—जान पड़ता है ऐसा कुछ हुआ नहीं । तुमने कुछ-न-कुछ गड़बड़ की है ।

बुद्धि—जी हाँ, मुझे तो शौक है

बृज—जगदीश, देखो तो तार कब चला है ?

जगदीश—कल ।

बृज—यानी भेजने वाला किसी भी क्षण आ सकता है ।

बुद्धि—आए । आने दो । क्या मैं डरता हूँ ? साँच को क्या आँच ।

(कलुआ आता है । पीछे-पीछे एक पकी आयु के क्रोधित सज्जन हैं ।)

कलुआ—एक कौनो मनई आवा है । नाम बतावत नाहीं, बरड़-बरड़ बतियात है ।

बुद्धि—(घबराकर) अच्छा, अच्छा, रहने दे । तू जा । भाग ।

(आने वाले से) आइए, आइए, आप..... ?

आने वाला—क्या आप ही बुद्धिस्वरूप हैं ?

बुद्धि—जी, लोग कहते तो ऐसा ही हैं । और आप ?

आने वाला—मैं जयपालसिंह का ससुर हूँ ।

[सब लोग सन्नाटे में आ जाते हैं ।]

मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप पागल हैं, मूर्ख हैं या बदमाश हैं ?

बुद्धि—(अपमानित होकर) देखिए साहब, मैं यह गाली-गलौज नहीं सह सकता । मुझे भी क्रोध आ रहा है । एक तो बीमार दामाद को छोड़कर भाग गए और ऊपर से बाही-तबाही बकने यहाँ चले आए ।

ससुर—वह तो अदालत में पता चलेगा ।

बुद्धि—क्या मैं अदालत से डरता हूँ ? स्वयं वकील हूँ । समझे आप ।

ससुर—तो आप वकील हैं ! धन्य है फिर तो । अच्छा सुनिये, आपको समझा तो दूँ ही कि आप कितने बड़े मूर्ख हैं—

आपने यह कैसे जाना कि मैं नौकरी से डिसमिस हो गया था ?

बुद्धि—पड़ोसिन ने कहा था ।

ससुर—क्या यह कहा था कि मैं डिसमिस होकर शहर छोड़ गया हूँ ?

बुद्धि—हाँ, उसने कहा था कि आप सब लोग न जाने कहाँ चले गए थे ।

ससुर—तो इससे आप यह नहीं समझे कि हम लोगों ने मकान बदल लिया था । ख़ूब ! वक़ालत गधे चराकर पास की थी या पढ़कर ? अच्छा, यह आप कैसे समझे कि जयपाल सांघातिक बीमार हैं ?

बुद्धि—डॉक्टरों ने मिलने जो नहीं दिया ।

ससुर—जी, उनको जोरदार ख़सरा थो । बस । अब आप कहिये वकील साहब अदालत में कैसी रहेगी । यदि यह सब तान तमूरा बिकता नज़र न आय तो मेरा नाम नहीं । आपने समझा क्या है ?

सब मित्र—अरे साहब, सुनिये तो ज़रा बैठकर बात कीजिये क्रोध से लाभ ही क्या है बुद्धि बाबू चाहते तो थे मित्र का भला ही ।

[इसी गड़बड़ में मनोरमा का प्रवेश]

मनोरमा—(बुद्धि के पास आकर गले से लगती है ।) यह सब क्या हो रहा है, डार्लिंग ?

[सब एकदम चुप हो जाते हैं ।]

मनोरमा—क्यों, आप मुझे देखकर चुप क्यों हो गए ? आप लोग इनके फ़्रेंड्स हैं । मुझे बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर । मैं कोई ग़ौर नहीं हूँ । इनकी होने वाली बीबी हूँ—मनोरमा स्टीवेन्स !

सब लोग—(चौककर) बीवी

मनोरमा—हाँ, बीवी। (बुद्धि से) डार्लिंग, देखो, तुम्हारे लिए मैंने डैडी, ममी सबको छोड़ दिया। पीटर और पॉल को भी धुतकार दिया।

सब लोग—(सकते में) बीवी! मनोरमा स्टीवेन्स! बुद्धूलाल भैया, यह बिज़िनेस करने जाकर क्या कर आए?

मनोरमा—करने जाकर क्या मानी? यह बिज़िनेस करते हैं। राजस्थान बस...क्या कम्पनी इनकी है।...क्यों न, डार्लिंग? यही तो तुमने टेन में बताया था।

जगदीश—मेम साहब, वह कम्पनी फ़ेल हो गई।

मनोरमा—फ़ेल हो गई! कैसे? कब? नहीं तुम लोग झूठ बोलते हो।

सिन्हा—जी हाँ, कम्पनी बनने से पहले ही बैठ गई।

मनोरमा—(चारों ओर देखकर) ओ, हम अब समझी। (बुद्धि से) मिस्टर बुद्धिस्वरूप आपने झूठ बोलकर मुझको धोखा दिया। पहले मेरे दिल में प्यार जगाकर अब छोड़ना माँगते हो। पर मैं नहीं छोड़ूँगी! मैं तुम पर अदालत में दावा करूँगी। (बुद्धि धीरे-धीरे सरककर द्वार तक पहुँच गया है।) पर आप जाता कहाँ हैं?

बुद्धि—(द्वार खोलकर) टिम्बकटू। (बाहर निकलकर भाग जाता है।)

मनोरमा—मैं छोड़ने वाली नहीं हूँ।

[पोछे भागती है।]

ससुर—मैं भी बिना मुक़दमे के जाने थोड़े ही दूँगा।

[भागकर जाता है।]

जगदीश—(सहमकर) यार, कमाल है बुद्धू को। जहाँ जाता

है एक बीमारी खड़ी कर लेता है ।

सिनहा—पर अब बीमारी ठीक करनी हो तो चलो हम भी चलें । देखें शायद कुछ हो सके ।

सब—चलो ।

[सब जाते हैं ।]

मिल की सीटी

पात्र

शर्बती—एक सुन्दर युवती । रमजू की हाल की ब्याही बहू

रमजू—मिल-मजदूर । युवक ।

डक्टर—मिल के हस्पताल का ।

बिशन—कोरमैन ।

पड़ौसी—मजदूर आदि ।

पहला दृश्य

[शर्बती तड़के सबेरे अपने छोटे से क्वार्टर में कुछ काम करती जा रही है और गा रहा है ।]

मैं कैसे जाऊँ पिहर वा राम !

अम्माँ बुलाएँ, भईया बुलाएँ

तू मत जा—सईया समझाएँ

मैं कैसे.....!

जब पिहरा में मेहा बरसे

सैयां बिन तब जियरा तरसे

सैयाँ को कैसे तब पाऊँ राम

मैं कैसे.....!

गले लगा कर बालम रोकेँ

नेह में फँस कर जियरा रोके

पिहर वा मैं कैसे जाऊँ राम

मैं कैसे... ।

[यकायक दूर से मिल की सीटी बजती है। शर्बती चौंककर रमजू को देखती हैं जो पड़ा सो रहा है। धीरे से उसके पास जा कर कहती है।]

शर्बती—अरे, उठो। सीटी हो गई। काम पर न जाओगे ?

रमजू—उठता हूँ। (जम्हाई लेकर) शर्बती आज तो काम पर जाने को जी नहीं चाहता।

शर्बती—वाह ! काम पर न जाने से कैसे होगा। जानते तो हो, वह विशनवा कैसा जल्लाद है।

रमजू—अरे, पर तू भी तो कुछ कम नहीं है।

शर्बती—(तुनककर) क्यों ? मैंने क्या किया है ?

रमजू—दिन भर आँखों के आगे घूमती रहती है। और रात भर बातें करके सोने नहीं देती।

शर्बती—(मुस्कराकर शरारत से) अँह मैं अकेली थोड़ा ही बात करती रहती हूँ।

रमजू—हाँ, पर मैं भी क्या करूँ ? लाचार हूँ।

शर्बती—क्यों ?

रमजू—(हंसकर) अपनी कजरारी आँखों से पूछ।

शर्बती—(हंसकर) अच्छा, अब उठो देर हो रही है।

रमजू—उठता हूँ बाबा उठता हूँ।

(उठकर अन्दर की तरफ जाता है। शर्बती मुस्कराती रहती है।)

द्वितीय दृश्य

(मिल मजदूर काम में लगे हैं। भीमकाय मशीन घबघबा रही है।

रमजू काम में लगा है।)

एक मजदूर—(धीरे से) अरे, रमजू। ठीक से काम कर वह फोर-मैन आ रहा है।

रमजू—कौन ?

मजदूर—वही बिशन रे ।

(बिशन आता है शान में अकड़ा हुआ)

बिशन—(रमजू से बड़े रोब से) क्यों रे, रमजू ? काम नहीं किया जाता । सोता है ।

रमजू—कर तो रहा हूँ ।

बिशन—कर रहा है कि सो रहा है । नई बीबी लाया है तो भी काम तो करना ही होगा । सोने से पैसे काट लूँगा ।

[रमजू चुपचाप काम करता रहता है । मशीन की घड़घड़ाहट बढ़ती जाती है । एक प्रकार को भयानकता—शब्द के चारों-ओर काँपती है ।]

तीसरा दृश्य

[शर्बती मिल सं लौट रही है । दोपहर का सन्नाटा है । हाथ में शर्बती के खाली बर्तन हैं । वह रमजू को दोपहर का भोजन देकर आ रही है । पगडण्डी एक दम सूनसान है । पीछे-पीछे बिशन आता है ।]

बिशन—शर्बती ! शर्बती !

[शर्बती झिझककर रुक जाती है । बिशन पास आ जाती है ।]

बिशन—ऐसी धूप में इतना तेज चला कर । थक जाएगी ।

शर्बती—(चुप रहती है)

बिशन—(हँस कर) ओह ! बड़ी चुप्पी साधे है । और रमजू से तो बड़ी फटर फटर बातें करती होगी ।

[शर्बती लज्जा से सर झुका लेती है । पैर के नाखून से ज़मीन कुरेदने लगती है ।]

ओफ़ ! तू कितनी सुन्दर है । जी चाहता हैं...देख धूप से तेरे गाल लाल हो रहे हैं । माथे पर पसीना आ रहा है । चल जरा छाया में बैठ ।

शर्बती—(धीरे से काँपती हुई) नहीं, मुझे बहुत काम है ।

बिशन—(आगे बढ़ कर) काम ही क्या है ? रमजू को खुश करना सो कर लेना...दो घड़ी हम पर भी कृपा कर दे तो...तेरा गुलाम बना रहूँ । सुना ।

[आगे बढ़ कर हाथ पकड़ लेता है । शर्बती एकबारगी काँप जाती है । हाथ छुड़ा कर पीछे हट जाती है]

बिशन—उफ़, रे तेरा नखरा ! जानती है रमजू की कितनी तरक्की करा रुकता हूँ...देख, सुन...

(शर्बती मुड़ कर तेजी से चली जाती है ।)

बिशन—जा ! मुझ से बच कर जाएगी कहाँ !

चौथा दृश्य

[शर्बती चुपचाप बैठी है । कुछ सोच में । यकायक बाहर कुछ हल-चल और शोर सा होता है । घबरा कर वह बाहर जाती है तो देखती है कि बेहोश रमजू को मजदूर ला रहे हैं ।]

शर्बती—हाय राम ! यह क्या हुआ ? बताओ तो, अरे भइया, तुम्हीं बताओ इन्हें क्या हुआ है ।

मजदूर—एक्सीडेंट हो गया ।

शर्बती—(चीखकर) हाय राम !

मजदूर—धीरज धरो, बड़िन । अभी डाक्टर साहब आते ही होंगे । सब ठीक हो जाएगा । कुछ खतरे की बात नहीं है ।

शर्बती—(सिसकते हुए में) खतरा...उन्हें...नहीं ! नहीं ।

[भीड़ में हलचल । 'डाक्टर आते हैं' 'डाक्टर आते हैं' ।

डाक्टर साहिब आगे आते हैं ।]

डाक्टर—(मरीज को देखते हुए) क्या हुआ था ?

कई मजदूर—साहब एक्सीडेंट...हाय, माथे से...कितना खून निकल रहा है...मुँह देखो कैसा हल्दी सा हो रहा है...।

डाक्टर—(देख कर) ठीक है ! मैं पट्टी बाँधे देता हूँ । और दवा
 दिए देता हूँ । ठीक हो जाएगा ।

(पट्टी बाँधता है)

शर्बती—(गिढ़गिढ़ा कर) डाक्टर साहब, इन्हें अच्छा कर दो ।
 जो कुछ मेरे पास है, सब ले लो । हाय, न जाने कैसी
 सायत में घर से निकले थे । क्यों, डाक्टर साहब, जल्दी
 ही अच्छे हो जाएँगे न...

डाक्टर—(बात काट कर) अरे, हाँ हो जाएगा ।

(पट्टी बाँध कर उठते हुए)

बस दूध । और कुछ न देना । सब ठीक हो जाएगा ।

[डाक्टर चला जाता है । मजदूर भी धीरे-धीरे शर्बती को ढाढ़स
 देते हुए चल देते हैं]

शर्बती—(अकेली) तुम अच्छे हो जाओ । हे भगवान, इनके
 बदले मुझे इस से ज्यादा दुख दे लो ।

पाँचवाँ दृश्य

[डाक्टर रमजू को देख रहा है । रमजू होश में है]

शर्बती—क्यों डाक्टर साहब, अब तो इन्हें कितने दिन हो गए ।
 कब तक अच्छे होंगे ?

रमजू—हो ही जाऊंगा...हाय !.. तू क्यों फिकर में दुबली हुई
 जाती है ।

डाक्टर—(हिचकिचाते हुए) बात यह है कि मरीज को कमजोरी
 बहुत है । सिर्फ फल मिलने चाहिये और दूध । और यह
 दवा लिखे देता हूँ, शहर से मंगा लेना, मिल के दवाखाने
 में नहीं है ।

रमजू—(कमजोरी से) अरे, डाक्टर साहब, हमारे पास फल
 खाने को पैसे कहाँ हैं ? और यह मंहगी दवाएँ तो बड़े

लोगों के लिए हैं, हम कहाँ से लाएँगे !

शर्बती—अच्छा अब चुप रहो । डाक्टर साहब, यह दवा कितने की होगी ?

डाक्टर—पन्द्रह रुपए की ।

शर्बती—(चोट सी खाकर) पन्द्रह की !

डाक्टर—हाँ, अच्छा तो मैं चलता हूँ । और कोई बात हो तो खबर देना ।

(जाता है)

शर्बती—(धीरे से) पन्द्रह रुपए !

रमजू—अब पन्द्रह रुपयों की दवा कहाँ से आएगी ? अरे, तू नाहक फ़िक्र करती है । मैं यों ही चंगा हो जाऊँगा ।

(बिशन आता है)

रमजू—कौन ? बिशन भइया ! आओ, आओ ।

बिशन—कहो क्या हाल है । डाक्टर ने क्या दवा दी ?

रमजू—दी कहाँ ! भइया, पन्द्रह रुपए की दवा लिख दी है । अब भला हम पन्द्रह रुपए कहाँ से लाएं ।

बिशन—हूँ...तो फिर क्या हुआ ? मैं दे दूँगा रुपए तो

रमजू—नहीं, भइया.....

बिशन—नहीं क्या ? बख़्त पर एक दूसरे के काम न आए वह आदमी ही क्या । तुम भाभी को साथ कर दो मैं अभी दिए देता हूँ ।

रमजू—भाई तुम्हारी बड़ी किरपा है ।

शर्बती—मगर...

रमजू—जा, तो शर्बती, रुपए लेकर दवा मंगा लीजो जा ।...भाई तुम्हारी बड़ी किरपा है ।

बिशन—किरपा की क्या बात है । आओ भाभी ।

(दोनों जाते हैं)

छठा दृश्य

(बिशन और शर्बती । बिशन के घर में आते हैं । बिशन घूम कर दरवाज़ा बन्द कर देता है ।)

शर्बती—(घबरा कर) यह क्या ? किवाड़ बन्द क्यों कर दिए ?

बिशन—(हँस कर) चिड़िया को पिंजरे में पा कर बेवकूफ़ ही दरवाज़ा खुला रखते हैं शर्बती !

शर्बती—क्या कहते हो ? दरवाज़ा खोलो मुझे जाने दो...मुझे रुपए नहीं चाहिए...नहीं...चाहिए...

बिशन—मुझे तो तुम्हारी चाह है । रमजू बिना दवा के मर जाएगा...मर...मर...

शर्बती—मुझ पर किरपा करो...मुझे जाने दो...(ज़ोर से) जाने दो ।

बिशन—(हँसकर) जाओ । मगर याद रखो रमजू की मौत की जिम्मेदार तुम होगी । बिना दवा के वह मर जाएगा । बचेगा नहीं । एक एक मिनट भारी है ।

शर्बती—ओह !

(रुककर, लड़खड़ा जाती है । सर जैसे घूम रहा है ।)

बिशन (हँसकर) समझ आ गई न ? हा, हा, हा.....

सातवाँ दृश्य

(शर्बती भागती आ रही है । हाथ में शीशी है । परेशान हाल ।

भाग कर घर में आ कर ।

शर्बती—सुनो, मैं दवा ले आई । दवा लो पी लो । सुनो, सुनो...
(बैठ कर रमजू को हिलाती है ।)

सुनो, उठो...उठो...

(सहसा रमजू फहता है)

रमजू—(धीरे-धीरे) शर्बती...तू आ गई...मुझे देर हो रही है ।

देख काम पर जाना है ।...मुझे तैयार कर दे...

शर्बती—दवा पी लो, दवा । लो ।

रमजू—मेरा बख़्त हो रहा है काम का...अब तू जाना नहीं...जाना मत...

(दूर मिल को सीटी की आवाज़)

सुना सीटी बज रही है । काम पर जाने का वक्त हो गया

...जल्दी कर जल्दी...शर्बती !...आह !

(गिर पड़ता है)

शर्बती—अरे, सुनो...नहीं सुनते...चले गए...मुझे छोड़ कर...
हाय !

(बेहोश हो जाती है । हाथ की दवा की शीशी छूट कर गिर पड़ती है । टूट कर दवा फर्श पर धीरे-धीरे रमजू और शर्बती के बीच से बहती हैं—)

समाप्त

भूतों की दुनिया

[बस्ती से दूर जंगल में एक खँडहर । जान पड़ता है किसी समय में इसे छोड़कर लोग चले गए थे । तब से यह ऐसा ही सुनसान पड़ा है । चारों ओर जंगल है । मकान के अन्दर भूतों का निवास है । दो भूत और एक भुतनी । भूत दोनों युवक हैं, भुतनी युवती और बहुत ही सुन्दर । दोनों ने इस खँडहर को अपना घर बना रखा है । दोनों ही युवती को गाकर, नाच कर, हँसाकर रिक्काते हैं और वह भी कभी एक के गले में हाथ डालती है तो कभी दूसरे को गले लगाती है । तीनों में बड़ो मैत्री है । कमरे में युवती अकेली है । अपने यौवन और रूप की मस्ती में गा रही है ।)

भुतनी—यही है अपना सुन्दर राज
सजा बन में है सुन्दर साज ।
मेरे दो-दो तो सैयाँ है
लेवें वह मेरी बलैयाँ हैं ।
बनी मैं दोनों की सरताज
यही है अपना सुन्दर राज ।

(इतने में पीछे से पहला भूत आ कर उस की आँखें बन्द कर लेता है । भूत का नाम है अनजान ।)

भुतनी—(उसके दोनों हाथ टटोल कर) मैं पहिचान गई ।

अनजान—तो बोलो कौन है ?

भुतनी—तुम हो ।

अनजान—‘तुम’ कौन ?

भुतनी—तुम, तुम हो ।

(हँस कर हाथ हटा देती है)

अनजान—आज तो तुम बड़ी सुन्दर लग रही हो ।

भुतनी—(मुँह बना कर) आज ही ?

अनजान—छोड़ो भी यह आदमियों की सी तिनकने की आदत । हम लोग तो उन से अलग हैं । हमारी दुनिया में तो हँसी-खुशी, गाना-नाचना है । दुःख और परेशानी तो आदमियों का ही हिस्सा है ।

भुतनी—हाँ ! यह तो है । अच्छा, तुम आ कहाँ से रहे हो ।

अनजान—हवा खा कर । ज़रा बस्ती में घूमकर ।

भुतनी—बस्ती में ! मेरा भी जी वहाँ जाने को बहुत चाहता है । पर.....

(दूसरा भूत 'अव्यक्त' अन्दर आता है ।)

अव्यक्त—हाँ, पर क्या है, प्यारी ?

अनजान—आओ, भाई ! कब से तुम्हारी राह देख रही है बेचारी । देखो आज सुन्दर भी कितनी लग रही है ।

अव्यक्त—हाँ ! जैसे पूनो का चाँद हो ।

अनजान—वाह ! खूब कही है तुमने । मेरे मुँह से बात रा ली ।

भुतनी—हटो भी । तुम दोनों बड़े शरीर हो ।

अव्यक्त—शरीर कहाँ हैं हम । शरीर होते तो हम लोगों के शरीर भी होता । और यदि होता तो हम में स्वार्थ, क्रोध, घृणा, काम इत्यादि भी होता । फिर इस तरह हम तीनों साथ थोड़े ही रह सकते थे ।

भुतनी—क्यों ? रह क्यों नहीं सकते थे ? दुनियाँ के लोग क्या साथ-साथ नहीं रहते हैं ?

अनजान—रहते तो हैं । पर, जैसे रहते हैं उन का ही दिल

जानता है। भाई-भाई में, माँ-बेटे में, स्त्री-पुरुष में हरदम शंका, सन्देह, कुढ़न रहती है।

भुतनी—मैं नहीं मानती। यह सब तुम लोग इसलिए कहते हो कि मैं कहीं बस्ती में चली न जाऊँ।

[अनजान और अव्यक्त एक दूसरे को एक टक देखते हैं। मानों

आँखों ही आँखों में कुछ निर्याय कर रहे हों।]

अव्यक्त—तो फिर चलो, शहर में रह आएँ कुछ दिन।

भुतनी—सच ?

अनजान—हाँ, तुम घूम भी लोगी, और देख भी।

[खुशो-खुशी तैयार हो कर दोनों के साथ जाती है।]

दूसरा दृश्य

[बस्ती, राजपथ, दोनों भूत और भुतनी जा रहे हैं। सबक

पर भीड़-भाड़ है, पर इन तीनों को—शरीर न होने

के कारण—कोई अड़चन नहीं पड़ रही।]

भुतनी—देखो, सब लोग काम में लगे हैं। चहल-पहल हो रही है और तुम लोग कहते हो कि इन सबके मन में पाप है, अशान्ति है। मैं नहीं मान सकती। मनुष्य तो सब से सुन्दर कृति है प्रभु की।

अव्यक्त—अनजान भइया, मेरी राय है कि एक दिन-रात किसी घर में रह कर इन्हें सब कुछ दिखा दिया जाए।

अनजान—राय तो अच्छी है।

भुतनी—हाँ! चलो, इस घर में रहेंगे। देखो कैसा प्यारा बच्चा है। माँ भी देवी-सी सुन्दर और सुशील है। बस यही ठीक है।

[तीनों अन्दर जाते हैं। घर में बालक, उसकी माँ—युवती चन्दो।

गृह-स्वामी—युवक रामप्रताप, उसका भाई चन्दन और

बूढ़ों माँ हैं। गृह-स्वामी के दफ़्तर का समय हो रहा है। वह तैयारी कर रहा है।]

रामप्रताप—(झल्ला कर) समझ में नहीं आता, दिन भर बैठी-बैठी क्या करती रहती हो। यह नहीं होता कि जूते पर पालिश ही कर दिया करो। रोज़-रोज़ यों ही झगड़ना पड़ता है।

(चन्दो चुपचाप मुस्कराती आती है।)

अब रहने दो, देर हो रही है। फिर यह सेवा दिखाना।
(तैयार होता है।)

चन्दो—शाम को ज़रा जल्दी आना।

रामप्रताप—क्यों ?

चन्दो—यों ही। दिल नहीं लगता है मेरा।

रामप्रताप—ओह हो ! (हँसता है प्रेम से) अच्छा, आ जाऊँगा। अब चलूँ।

[जाता है। चन्दन आकर बच्चों के सामने खड़ा होकर मुस्कराता है।]

चन्दो—(हँस कर) क्या हूँ ?

चन्दन—भईया के बिना दिल जो नहीं लगता है, भाभी। उसे लगाने आया हूँ।

[आगे बढ़ कर गले में हाथ डाल देता है।]

चन्दा—अरे, छोड़ो। कोई देख लेगा। क्या करते हो।

[सास बाहर से आवाज़ देती है।]

सास—बहू ! बहू ! मर गई क्या ? बस काम की न धाम की, ढाई सेर नाज की। यहाँ तो काम करते करते मरी जाती हूँ, रानी जी को कंधी चोटी से ही फुरसत नहीं मिलती।

चन्दो—आई।

[जल्दी जल्दी बाहर जाती है तो देखती है कि सास आराम से खाट

पर बैठी है । सामने बच्चे ने तमाम हाथ पैरों में मिट्टी लथेड़ ली है ।]

चन्दो—क्या है ?

सास—लो, देखती भी नहीं क्या है । आँखें फूटी हैं क्या ?
आने दे लल्ला को । कहूँगी भइया अब तो मुझे काशी भेज दे । न
रहूँगी, न देखूँगी ।

चन्दो—(झुँझलाकर बच्चे को झँझोड़ती है ।) अभागो, तू मर
भी नहीं जाता ।

[रोते बच्चे को लेकर अन्दर जाती है । उधर सास उठ कर अपने
कमरे में जाकर धड़ाम से दरवाज़ा बन्द कर लेती है । चन्दो बच्चे को
सुलाने लगती है । बच्चा जैसे ही सोता है चन्दन इशारे से चन्दो को
बुलाता है । चन्दो धीरे से उठ कर जाती है]

चन्दन—(धीरे से) भाभी । आओ ।

[चन्दो इधर उधर देखती है]

चन्दन—क्या देखती हो ? मुन्ना सो रहा है । माँ भी सोती
हैं । बस—

[दोनों कमरे में जाते हैं । दरवाज़ा बन्द हो जाता है । दोनों भूत
और भुतनी एक टक देखते रह जाते हैं ।]

भुतनी—बेचारा गृहस्वामी !

अनजान—चलो, उसकी भी दशा देख लें ।

[तीनों चलते हैं । दफ़्तर तक पहुँचते पहुँचते 'दो' का घंटा बजता
है । बाबू लोग बाहर निकलते हैं क्योंकि शनिवार है, छुट्टी जल्दी हो
गयी है । रामप्रताप भी बाहर आकर रुकता है और फिर जल्दी-जल्दी
जाता है । पोछे-पोछे तीनों अदृश्य मेहमान भी जाते हैं । रामप्रताप
चलते चलते रुक कर एक दूकान से फल खरीदने लगता है ।]

भुतनी—(उसे फल लेते देख कर) बेचारा गृहस्वामी ।

[रामप्रताप फल लेकर आगे बढ़ता है और एक जगह रुक कर

इधर-उधर देख कर ऊपर जीने में चढ़ जाता है। पीछे-पीछे तीनों दूसरे लोक के प्राणी भी। ऊपर पहुँच कर—]

रामप्रताप—बिन्दो ! बिन्दो !

बिन्दो—(अन्दर से) कौन है ? (आकर किवाड़ खोलती है) ओह ! आइये, आइये। ऐसी दोपहरी में कैसे भूल पड़े। (फल ले लेती है) अन्दर चलिए।

रामप्रताप—(अन्दर जाते-जाते) आज शनिवार है न। छुट्टी जल्दी हो गई थी। सो.....

[आगे बढ़ कर बिन्दो के गाल पर चुटकी ले लेता है।]

बिन्दो—पर घर पर राह न देखती होगी ?

रामप्रताप—अरे, छोड़ो भी। उसका दिल लगाने को बच्चा है, चन्दन है। और फिर वह प्रेम करना जाने भी क्या ? वह तो तुम्हें ही आता है। समझी !

[आगे बढ़ कर उसे सीने से लगा लेता है। भुतनी चौंक कर पीछे हट कर बाहर निकल जाती है। साथ ही साथ अनजान और अव्यक्त भी।]

तीसरा दृश्य

[तीनों फिर राम-प्रताप के घर के बाहर। अनजान और अव्यक्त बार-बार भुतनी के चिन्ताकुल मुख को देखते हैं।]

अनजान—तुमने देखा, मनुष्य कितना दुखी और नीच है ?

अव्यक्त—इस से तो हम लाखों दरजे अच्छे हैं।

[भुतनी चुपचाप घर में टहलती रहती है। देर तक। सहसा बच्चे के रोने की आवाज़। वह जाग उठा है। तीनों जाकर देखते हैं तो चन्दो ने उसे गोद में ले रखा है। उसका मुख चमक रहा है। वह बार-बार बच्चे को पुचकार रही है। रामप्रताप भी आता है। झुँझलाया-सा।]

चन्दो—बड़ी देर लगाई।

रामप्रताप—(बिगड़ कर) हाँ, दावत खाने चला गया था ।
नव देवो तव चखचख... (बच्चा आगे आकर उसे देखता है और
कहता है ।)

बच्चा—बाबूजी.....पार.....पार.....ऊँ ! ऊँ !

[रामप्रताप का गुस्सा गायब हो जाता है । वह हँस कर उसे उठा
कर चूमने लगता है ।]

चन्दा—कैसा हँस रहा है, तुम्हारे पास । है भी तो बिल्कुल
तुम जैसा ही ।

रामप्रताप—वाह ! कितना तो सुन्दर है । मुझ-सा कहाँ है ।
हाँ, तुम से अलबत्ता मिलता है ।

[दोनों बच्चे में लीन हो जाते हैं । भुतनी और दोनों भूत बाहर
आते हैं ।]

भुतनी—(धीरे से) वस, हम लोगों में यही नहीं होता ।
और यही स्वर्ग है ।

[अनजान द्यौर अव्यक्त मर झुका लेते हैं ।]

आवारा

थानेदार—

माताप्रसाद—उसका नौकर ।

भगवानदीन—गाँव के पण्डित ।

किसना—गाँव वाला ।

मुल्का— ”

रामआसरे— ”

रामदयाल—आवारा ।

रामदेई—भगवानदीन की लड़की ।

गाँववाला, गाड़ीवान, रामदयाल के साथी, आदि ।

पहला दृश्य

[थाना—सांयकाल, थानेदार मौज में है]

थानेदार—(शराब के हलके-हलके नशे में) क्या जगह है यह भी माताप्रसाद ! ऐसा लगता है जैसे दुनिया वाले इसे खोकर भूल भी गए हों । या जैसे यह गाँव सदा से सोता रहा हो ।

माताप्रसाद—सरकार, क्या कहें ? जबमे आप थानेदार होकर आए हैं दो घड़ी की चहल पहल हो जाती है । पहिले तो...ओफ़ !

थानेदार—(हँसता है) हः हः मुझे तो, अगर शराब न मिले तो यहाँ मरजाऊँ, यही तो वह न्यामत है जो जीवन के सूनेपन में हलचल पैदा कर देती है । ...लो तुम भी पियो ।

[शराब देता है]

माताप्रसाद—हिः हिः सरकार की दया है । हम तो रात दिन हुजूर की खैर मनाते हैं ।

[शराब पीता है । भगवानदीन आता है]

थानेदार—कौन ? भगवानदीन ! आओ, आओ, बैठो । बड़े मौक़े से आए हो ।

भगवानदीन—(दीनता से) सलाम हुज़ूर ! आपकी बड़ी कृपा है । (बैठता है ।)

थानेदार—लो, पियोगे ? सच कहता हूँ पण्डित जी, अगर तुम एक दफ़ा चख लो तो सब कुछ भूल जाओ । कमबख़्त होठों को लगते-लगते दिल में उतर जाती है । लो न ?

भगवानदीन—जी...जी...यह तो आपको ही शोभा देती है । आप राजा हैं । हम बेचारे ग़रीब ब्राह्मण क्या पिएंगे । धर्म भी तो...

माताप्रसाद—वाह पण्डित जी ! राजाओं के लिए पीना धर्म है ?

भगवानदीन—वही तो, वही तो, सरकार हमारे राजा ठहरे, राजा ।

थानेदार—मैं राजा ! हः हः...तो क्या पियोगे ? ठण्डा पानी ? या उसमें भी ऐव है ?

भगवानदीन—नहीं सरकार । वह पी लूँगा ।

थानेदार—माताप्रसाद, पण्डित जी को पानी दो ।

भगवानदीन—लीजिये ।

(पानी देता है ।)

थानेदार—हाँ, कैसे आए ? अब बताओ ।

भगवानदीन—अरे हुज़ूर, तक्रदीर को रोने आया हूँ । उस रामदयाल को तो आप जानते ही होंगे । वही आवारा । उसके मारे साहब, गाँव के लोगों का नाक में दम है । बहू-बेटियों का घर से निकलना मुश्किल है । और कल तो उसने हद्द कर दी । शराब पीकर जो हुल्लड़ मचाया है तो परेशान कर दिया । ग़ाली, ग़लौज, मोहल्ले भरको सरपर उठा लिया ।

थानेदार—हूँ ! तो मैं क्या कर सकता हूँ ?

भगवानदीन—ऐसा न कहें गरीब परवर । आप सब कुछ कर सकते हैं । उसे पकड़ कर जेल करा दें तो तीन महीने में ही अकल सही हो जाए ।

थानेदार—हूँ ! आप लोग उसे समझा कर देखिए । शायद मान जाए ।

भगवानदीन—न जाने कितनी बार समझाया है । कल तो उसने राजब ही कर दिया । किसना के घरके बाहर मुल्ला जी को घेर कर जो वाहियात बका है, कि बस । आप जानिये घर गिरिस्ती वालों का मोहल्ला है...उसे तो न किसी की शमे है न लिहाज ।

थानेदार—अच्छा मैं कल देखूँगा ।

भगवानदीन—बड़ी मेहरबानी है हुजूर की...अच्छा मैं चलूँ...आप भी आराम करें...।

थानेदार—आराम ही कर रहा हूँ । खैर जाइये, कहीं शराब पीता देखते-देखते आपकी भी नीयत न बदल जाए ।

[भगवानदीन जाता है । थानेदार शराब के दो चार घूँट लेता रहता है ।]

दूसरा दृश्य

थानेदार—किसना, तुझे रामदयाल से क्या शिकायत है ?

किसना—सरकार, शराब पीकर उसने जो गालियाँ बकी हैं तो न औरतों का खयाल किया न हम लोगों का ।

थानेदार—हूँ ! और आपको मुल्ला जी ?

मुल्ला—गरीब परवर, वह इन्सान नहीं, शैतान है । बल्लाह. शराब पी पी कर जो हरकतें करता है उन्हें करता तो शैतान भी शरमाए । परहेजगारों की तौहीन करना तो उसका जैसे शौवा हो ।

थानेदार—और तुम्हें रामआसरे ?

रामआसरे—उसके मारे 'साहब' बहू बेटियों का पानी भरने तक जाना हराम है। जहाँ तहाँ बैठ कर न जाने क्या-क्या गाया करता है।

थानेदार—तो तुम लोग उसकी आवारगी से बड़े परेशान हो।

[सब लाग—जी हाँ, बेशक इत्यादि कहते हैं]

तीसरा दृश्य

[स्थान-थाना]

थानेदार—ले रे रामदयाल, पी।

रामदयाल—आप की कृपा है।

[शराब पीता है]

थानेदार—क्यों रे, आजकल तुम्हें बड़ी जवानी आ रही है। गाँव के मर्द औरतें, तुम्हसे बड़े परेशान हैं।

रामदयाल—अरे साहब, यह सब बकते हैं। असल में मुझसे जलते हैं। रात दिन काम धन्धा, किर्चाकिच, बुराई-भलाई में लगे रह कर दो घड़ी भी जी बहलाते नहीं। मैं जो दो घूँट पीकर गम गलत कर लेता हूँ तो बस आग लग जाती है। रही औरतों की बात, तो इनके घर में घिरी घुटी औरतों को राग रङ्ग कहाँ नसीब, और आप जानें औरत तो आदत से ही रङ्गीनी पसन्द करती हैं। बस मैं दो गीत सुना देता हूँ.. और कोई बात हो तो क्रसम ले लीजिये... थोड़ी सी और दीजिएगा।

थानेदार—लो, मगर अब तो मालूम होता है जवानी की बहार जेल में काटनी होगी। कल ही तूने न जाने किसना की छोकरी को क्या क्या कहा और मुझा जी के भी गिर्द हो गया। मैं कहता हूँ, जरा होश में तो रहा कर।

रामदयाल—अब लीजिए, आप खुद ही सोच लीजिए। वह किसना की छोकरी खामखाह भाँक-ताँक कर देख रही थी। अरे बाबा, हम पीते हैं तो तेरा क्या ? बाप तो उसका पूरा कसाई है कसाई। बस मुझसे न रहा गया और मैंने उसका दिल बहलाने को एक रसिया सुना दिया। इतने में आन पहुँचे मुझा जी... बस फिर कुछ न पूछिए, वह-वह सुनाई है कि क्या कहूँ।

थानेदार—इन्हीं बातों पर तो तुझे जेल होगी... अच्छा भला वह गीत क्या था ?

रामदयाल—वह !..... अब जाने भी दीजिए आपके सामने मुझसे न गाया जायगा।

थानेदार—खैर जो भी हो, पर मुझे तेरा चालान करना पड़ेगा। और सजा भी होगी ही। सब तेरे खिलाफ हैं।

रामदयाल—हाँ ! ज़रा बोलत तो दीजिएगा। (शराब ढालता है) आप सजा कराएँगे तो मैं भी कहे देता हूँ कि... नहीं मानता मैं इन कम्बख्तों के बनाई मोर्दर्मी कानून। किसी का इशारा है ? ... और जो आपने सजा कराई, तो मैं सच कहता हूँ कि मैं न जाने क्या कर गुज़रूँ। सिर फोड़ कर शायद फिर जेल जाना पड़े।

थानेदार—क्यों, चढ़ गई है क्या ? सुन, दुनिया का कानून लोक दिखावे को सबको मानना पड़ता है। रही मेरा सिर फोड़ने की बात, सो खैर वह तो देखा जाएगा। मगर जेल तो होगी ही।

रामदयाल—(बिगड़ कर खड़ा हो जाता है) अगर मुझ जेल हुई तो.....।

थानेदार—(हँस कर) तो आज तो भर पेट पी ले कल से नहीं मिलेगी।

[क्रोध से भरा रामदयाल गटगट कर के पीने लग जाता है]

चौथा दृश्य

[स्थान—जेल का बाहरी भाग]

[कुछ कैदी सड़क बना रहे हैं, उनमें रामदयाल भी है]

कैदी—अरे, यार पत्थर है कि मिट्टी । खोदते-खोदते हाथ रह गए ।

दूसरा—बेटा, चोरी करते समय खयाल न आया था !

पहिला—चोर तू, तेरा बाप ।

रामदयाल—चः चः लड़ते क्यों हो ? और लड़ते ही हो तो सिर फोड़ डालो एक दूमरे का । और क्या ?

एक कैदी—अरे, वह कौन आ रहा है ?

रामदयाल—कहाँ ? वह ! वह तो थानेदार सा लगता है ।

[थानेदार घोड़े पर आता है । घोड़ा रोक कर]

थानेदार—(हँस कर) क्यों रामदयाल, दिमाग ठिकाने है ?

रामदयाल—थानेदार साहब मैं तो बड़े मजे में हूँ । चार दिन में छुटने वाला हूँ । तीन महीने पूरे हो रहे हैं । अब दो चार दिन में फिर वही गाँव ।

थानेदार—और वही भगवानदीन की शिकायतें, क्यों ? (हँसता है) अच्छा, अच्छा, छूट-कर आना ज़रा—(आगे बढ़ जाता है ।)

रामदयाल—बड़ा शरीफ़ है, बेचारा ।

कैदी—शरीफ़ नहीं, ख़ाक़ है । जेल में डाल देता है चाहे जिस । मेरा बस चले तो कच्चा चबा जाऊँ ।

रामदयाल—रहने दे, काम करे जा । नहीं तो इसी फावड़े से सर फोड़ दूँगा । हाँ ।

(कैदी चुपचाप काम में लग जाते हैं ।)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—भगवानदीन का घर)

[एक आदमी दौड़ता आता है]

आदमी—(पुकारकर) पंडित जी, अरे पंडित जी !

भगवानदीन—(बाहर निकल कर) क्या है रे ?

आदमी—पालागन महाराज । मैं बड़ी त्रिपता में हूँ । घरवाली बच्चा होने में पड़ी है और अपने गाँव की दाई अलग बीमार है । ज़रा आप चले चलते तो कृपा होती । आपकी दवा में जादू है, महाराज, जादू ।

भगवानदीन—मगर मैं ऐसे मामले में क्या कर सकता हूँ ? कोई बीमारी उमारी हो तो ख़र दवा दे भी सकता हूँ । यह तो दाई का ही काम है ।

आदमी—अरे, ऐसा न कहिए पंडित जी । आपके हाथ में जस है । बेचारी दर्द से तड़प रहा है । आपका बड़ा अहसान होगा, महाराज ।

[रामदेई आती है]

रामदेई—बाबू !

भगवानदीन—बिटिया !

रामदेई—चले क्यों नहीं जाते ?

भगवानदीन—मगर मैं कहूँगा क्या ?

रामदेई—तो मैं ही जाती हूँ ।

भगवानदीन—तू ! तू इतनी दूर दूर से गाँव में कहाँ जायेगी ।

आदमी—मैं सुबह ही पहुँचा दूँगा, महाराज । मेरी घरवाली की जान बच जायेगी !

रामदेई—चलो, मैं चलती हूँ !

आदमी—चलिए, चलिए ।

[दोनों शीघ्रता से जाते हैं]

छाँटा दृश्य

स्थान—जंगल

(रामदयाल बहली में साधियों सहित आ रहा है)

रामदयाल—(गाड़ीवाले से) अरे, कुछ दिखता भी है कि योंही चलता जा रहा है ? गाँव पास ही है न ?

उसका साथी—अभी तो मीलों है, यार । आधी रात तक भी पहुँचे तो बहुत समझना । हाँ । (गाता है ।)

गोरी धीरे चलो, ह ले जोवना

गोरी धीरे चलो...

[गाड़ी चली जाती है । ज़रा देर बाद रामदेई की गाड़ी आती है । वह अपने गाँव लौट रही है । एकाएक गाड़ी चरचरा कर रुक जाती है]

रामदेई—अई ! क्या हुआ ?

गाड़ीवान—(भुक कर देखता है) बीबी धुरा टूट गया है ।

रामदेई—फिर ?

गाड़ीवान—फिर.....सुबह से पहले कुछ हो सकना फठिन है । रात को जाऊँ भी कहाँ ?

रामदेई—सबेरे ! बप्पा से तो तुरन्त लौटने को कहा था । चलो, पैदल ही चलो ।

गाड़ीवान—बीबी, बैलों को जङ्गल में कैसे छोड़ूँ ।

रामदेई—ओह ! तो मैं जाती हूँ ।

[चल देती है । गाड़ीवान पुकारता है, पर वह चली जाती है, उधर ही जिधर रामदयाल की गाड़ी गई है]

रामदेई—वैसा अन्धेरा है, आपरे...कहीं कोई मिल जाए तो (तेज़ी से चलती है, हाँफने लगती है ।)

[एकाएक वह रामदयाल की पाटी के पास पहुँच कर रुक जाती है । वे लोग जङ्गल में मङ्गल करने रुक गए हैं । आग की रोशनी में

रामदेई साक्र दिखाई दे रही है। उसके शरीर की मानो जान ही निकल गई हो ऐसी दशा है।]

रामदयाल—कौन है रे ? इधर चल। आगे आ (रामदेई आगे आती है) अरे, रामदेई ! क्या कर रही है यहां इतनी रात गए ? चल बैठ जा तू भी। सुबह हो चलेंगे।

रामदेई—नहीं, नहीं। मैं अभी जाऊँगी। रात भर यहां...

रामदयाल—अंधेरी रात को कहाँ जाएगी ? कोई जानवर मिल गया तो फाड़ खायगा।

रामदेई—पर तुम तो मेरे लिए जानवर से ज्यादा हो। यहाँ ठहरने से तो मरना अच्छा है।

रामदयाल—तो जा, मर। खड़ी क्यों है ? जान ? जाती क्यों नहीं ?

रामदेई—डर लगता है।

रामदयाल—तो बैठ जा यहाँ। जान क्यों खाती है।

[रामदेई दूर दूर कर बैठ जाती है]

रामदयाल—(हँसकर) क्यों वहाँ क्या जानवर न पहुँच सकेंगे ? हाँ रे मनसुखा, खोल तो बोतल। चलने दे दौर। बड़े दिन बाद मिली है। और मौसम भी पीने का है।

[शराब पीते हैं]

एक साथी—आज तो जी भर कर पीने को जी चाहता है। इतनी कि...

दूसरा—कि भले-बुरे का होश न रहे।

रामदयाल—(नशे में) हाँ यारो...(गाता है)

लहंगा तेरा घूम घुमौआ, नादा मन्हेदार,

गोरी धीरे दखो

रामदेई—(अपने आप) आज की रात...इन मतवालों के

के बीच...जाने क्या करें यह सब मिल कर...हाय, मैं कहाँ जाऊँ ? उधर जंगल, इधर यह मतवाले...जाने कैसी बीतेगी यह रात । सबेरा हो तो बात है ।

सातवाँ दृश्य

[स्थान—थाना । रामदयाल आता है]

रामदयाल—सलाम, थानेदार साहब ।

थानेदार—आओ रामदयाल, छूट आए ?

रामदयाल—जी हां । अभी आ रहा हूँ । सोचा आपके भी दरसन करता चलूँ ।

थानेदार—दर्शन तो आज शाम को क्यों आओगे न ?

रामदयाल—जी क्यों नहीं ।

(भगवानदीन आता है)

थानेदार—कौन ? भगवानदीन !

भगवानदीन—रामदयाल ! भाई ! (टूटकर गले मिलता है)

रामदयाल—(हैगची से)—अरे पंडित जी...जी...

भगवानदीन—हाँ । तुम तो देवता हो, देवता । थानेदार साहब, यह देवता हैं । न जाने मेरी अकल पर पत्थर पड़े थे कि मैंने इनकी शिकायत की ।

थानेदार—(आश्चर्य से) मगर हुआ क्या ? रामदयाल कबसे देवता हो गया ?

भगवानदीन—जी हाँ, साहब । आप जानते हैं कल रात मेरी लड़की पास के गाँव से लौट रही थी । त्रिकुल अकेली । रास्ते में रात भर उसे इन लोगों के साथ अकेली रहना पड़ा...उसने सारा हाल मुझसे कहा है...मैं कहता हूँ ऐसी लाचार हालात में भी एक लड़की को देखकर जिसका मन ठीक रहे—वह

देवता है, पूजने योग्य ।

रामदयाल—(बिगड़ कर) अच्छा, अच्छा, रहने दीजिए, पांडित जी । अब आप जाइए, जाइए । मैंने कोई खास बात नहीं की । हर आदमी वही करता जो मैंने किया । मैं जानवर नहीं, इन्सान हूँ । फिर आप कैसे समझते हैं कि आपकी लड़की... उफ़, अब आप जाइए, पांडित जी, जाइए ।

[उसे ठेल कर बाहर कर देता है]

उफ़ । यह लोग भी न जाने मुझे क्या समझते हैं ।

थानेदार—सचमुच, रामदयाल ! तुम देवता हो गए मालूम पड़ते हो ।

रामदयाल—आप भी ऐसा कहते हैं, तब तो मैं पागल हो जाऊँगा । आपने इस पांडित की लड़की को देखा है ! वह बदन-सूरत, आवनून सा रंग, चेचक से भरा मुँह... कोई भी आदमी वही करता जो मैंने किया ।

थानेदार—हः हः हः

(जोर से हँसता है)

आठवाँ दृश्य

[स्थान—गाँव की सड़क ; रामदयाल जा रहा है]

भगवानदीन—रामदयाल, भाई !

रामदयाल—पालागन ।

भगवानदीन—भाई, मैं तुमसे कितनी बार क्षमा माँग चुका हूँ । अब क्षमा कर दो । एक बार घर चलो, तुम जैसे देवता के चरणों से घर पवित्र हो जाएगा ।

रामदयाल—अच्छा, अच्छा...

[कहता कहता बौखलाया सा चला जाता है । आगे चलकर रामदेई मिलती है ।]

रामदेई—सुनिए ।

रामदयाल—(बौखलाहट से) क्या है ?

राहदेई—तुम हमारे यहाँ चलो न । मैं बिनती करती हूँ । मैं तुम्हारी पूजा करना चाहती हूँ । चलो, मैं नहीं छाड़ूंगी अब ।

रामदयाल—नहीं, नहीं । मुझे अभी पासके गाँव में बीमारी फैलने की खबर लगी है, वहीं जाना है !

[चला जाता है]

रामदेई—कैसा देवतासा सुभाव है ! सदा औरों का ही ध्यान रहता है ।

(पीछे पीछे जाती है)

नवाँ दृश्य

(स्थान-थाना)

रामदयाल—थानेदार साहब, मैं एक न सुनूँगा । आप मेरी जान बचाइए । मुझे बीमारी के गाँव में जाने दीजिए । यहाँ मैं मर जाऊँगा ।

थानेदार—(आश्चर्य से) अजीब बात है...

[रामदयाल घबरा जाता है । थानेदार दोनों को ध्यान से देखता रह जाता है]

थानेदार—ठीक ! तुम दोनों ही जाओ । यही ठीक रहेगा ।

रामदयाल—(अटकते हुए) मगर...मगर...मगर...

रामदेई—मैं सदा आपकी आज्ञा मानूँगी । ठासी बन कर रहूँगी ।

भगवानदीन—भाई अब, मेरी गलती भी माफ़ कर दो ।

रामदयाल—(दाँत पीस कर) ग़लती ! ग़लती तो मेरी ही थी जो...पर मैं वह ग़लती भी कर कैसे सकता था.. औरत जात पर जोर कैसे चलता . चल रामदेई चल । मेरे साथ है तो रह । अचछा, थानेदार साहब चलता हूँ, दूसरे का दुख दूर करने । हा: हा: हा:

(दोनों जाते हैं)

थानेदार—(बौखलाकर) यह सब क्या है ? क्या तमाशा है । सबको क्या हो गया है ? क्या बात है ?

भगवानदीन—देवताओं की बातें हम लोग क्या समझेंगे, साहब ।

थानेदार—देवता . गुरु . . . रामदयाल आवारा . . .

[कहकहा मार कर हँसता है]

